पाइयपच्चूसो

मुनि विमल कुमार

प्राकृत भाषा देवभाषा या दिव्यभाषा है। यह कहना कम मूल्यवान् नहीं होगा कि वह जनभाषा है। वह जनभाषा है इसलिए आज भी जीवित भाषा है। कुछ रूपान्तर के साथ बृहत्तर भारत के बड़े भाग में बोली जाती है। उसका मौलिक रूप आज व्यवहार भाषा का रूप नहीं है, फिर भी अनेक भाषाओं और बोलियों का उद्‌गम स्रोत होने के कारण उसका अध्ययन और प्रयोग कम अर्थवाला नहीं है। एक जैन मुनि के लिए उसकी सार्थकता सदैव बनी रहेगी।

जैन साहित्य की कथाओं के आधार पर लिखित ये प्राकृत काव्य प्राचीन परम्परा की कड़ी के रूप में मान्यता प्राप्त करेंगे। मुनिजी ने वर्तमान युग में प्राकृत भाषा में काव्य लिखने का जो साहस किया है, उसके लिए साधुवाद देय है यश से काव्य लिखा जाता है किन्तु यश से निरपेक्ष होकर केवल अंतःसुखाय लिखने की प्रवृत्ति बहुत मूल्यवान् है। तेरापन्थ धर्मसंघ में आज भी प्राकृत और संस्कृत जीवित भाषा है। उनके अध्ययन, अध्यापन और रचना का प्रयोग अविच्छिन्नरूप में चालू है।

—आचार्य महाप्रज्ञ

पाइयपच्चूसो

मुनि विमल कुमार

जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रकाशक :
मंत्री
जैन विश्व भारती, लाडनूं

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण 1996

सौजन्य :
श्रीमती विमला देवी सेठिया
धर्म पत्नी श्री माणकचन्द सेठिया
कटक (उड़ीसा)

मूल्य : तीस रुपये मात्र

कम्प्यूटरीकरण :
सुदर्शन कम्प्यूटर सिस्टम,
12, गैलेक्सी मार्केट, सोजती गेट,
जोधपुर (राज.) फोन – 43314

मुद्रक : शान्ति प्रिन्टर्स एण्ड सप्लायर्स, दिल्ली

आशीर्वचन

तेरापन्थ धर्मसंघ में साहित्य की स्रोतस्विनी अनेक धाराओं में प्रवहमान रही है । राजस्थानी भाषा में साहित्य सृजन की परम्परा आचार्य भिक्षु के समय से ही बहुत समृद्ध रही है । हिन्दी साहित्य का सृजन भी प्रगति पर है । संस्कृत साहित्य की धारा सूखी नहीं है । गद्य और पद्य दोनों विधाओं में साहित्य लिखा गया है, पर वह सीमित है । प्राकृत भाषा हमारे यहां अध्ययन-स्वाध्याय की दृष्टि से प्रमुख भाषा के रूप में स्वीकृत है । किन्तु इसमें बोलने और लिखने की गति बहुत मन्द रही है ।

सन् १९५४ के बम्बई प्रवास में विदेशी विद्वान् डॉ. ब्राउन मिलने आए । उस दिन संस्कृत गोष्ठी में अनेक साधु-साध्वियों के वक्तव्य हुए । डॉ. ब्राउन ने कहा-'मैंने अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत में भाषण सुने हैं । मैं प्राकृत भाषा में सुनना चाहता हूं ।' उसी समय मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) ने प्राकृत भाषा में धारा प्रवाह भाषण दिया । डॉ. ब्राउन को बहुत प्रसन्नता हुई । वे बोले-'आज मेरा चिरपालित सपना साकार हो गया ।' एक विदेशी विद्वान् की प्राकृत में इतनी अभिरुचि देख मैंने साधु-साध्वियों को इस क्षेत्र में गति करने की प्रेरणा दी । प्रेरणा का असर हुआ । अनेक साधु-साध्वियों ने प्राकृत में विकास करना प्रारम्भ कर दिया ।

प्राकृत भाषा पढ़ना एक बात है, उसमें लिखना सरल काम नहीं है । पद्य लिखना तो और भी कठिन है । शिष्य मुनि विमल ने संस्कृत के साथ प्राकृत का भी अच्छा अध्ययन किया । मुनि विमल में अध्ययन मनन की रुचि है, लगन है, ग्राह्यबुद्धि है । पूरे श्रम से हर एक कार्य करता हे । इसी का परिणाम है यह कृति 'पाइय पच्चूसो ।'

पाइयपच्चूसो में उसकी बंकचूलचरियं आदि तीन पद्यात्मक कृतियों का संग्रह है । प्रस्तुत कृति की रचना में साहित्यिक लालित्य कम हो सकता है, पर प्राकृत सीखने वाले विद्यार्थियों और प्राकृत रसिक पाठकों के लिए इसकी उपयोगिता निर्विवाद है । मुनि विमल इस दिशा में अधिक गति करे और अपनी साहित्यिक प्रतिभा को निखारे, यही शुभाशंसा है ।

जैन विश्व भारती (लाडनूं) **गणाधिपति तुलसी**
११ अप्रैल १९९६

पाथेय

प्राकृत भाषा देवभाषा या दिव्य भाषा है। यंह कहना कम मूल्यवान् नहीं होगा कि वह जनभाषा है। वह जनभाषा है इसलिए आज भी जीवित भाषा है। कुछ रूपान्तर के साथ बृहत्तर भारत के बड़े भाग में बोली जाती है। उसका मौलिक रूप आज व्यवहार भाषा का रूप नहीं है, फिर भी अनेक भाषाओं और बोलियों का उद्गमस्रोत होने के कारण उसका अध्ययन और प्रयोग कम अर्थवाला नहीं है। एक जैन मुनि के लिए उसकी सार्थकता सदैव बनी रहेगी।

मुनि विमलकुमारजी अध्ययनशील और रचनाकुशल हैं। कुछ वर्ष पूर्व 'पाइयसंगहो' नामक एक संग्रह ग्रंथ का सम्पादन किया था। अभी वर्तमान में उनकी दो प्राकृत निबद्ध कृतियां सामने प्रस्तुत हैं-पाइयपडिबिंबो और पाइयपच्चूसो। प्रस्तुत कृति 'पाइयपच्चूसो' में तीन काव्य हैं-बंकचूलचरियं, पएसीचरियं, मियापुत्तचरियं।

भाषा का प्रयोग सहज, सरल और वार्ता प्रसंग हृदयहारी है। काव्य सौंदर्य के लिए जिस व्यंजना की अपेक्षा है, उसकी संपूर्ति नहीं है फिर भी पाठक के मन को आकृष्ट करने वाली सामग्री इसमें अवश्य है। जैन साहित्य की कथाओं के आधार पर लिखित ये प्राकृत काव्य प्राचीन परम्परा की एक कड़ी के रूप में मान्यता प्राप्त करेंगे। मुनिजी ने वर्तमानयुग में प्राकृत भाषा में काव्य लिखने का जो साहस किया है, उसके लिए साधुवाद देय है। यश से काव्य लिखा जाता है किन्तु यश से निरपेक्ष होकर केवल अंत:सुखाय लिखने की प्रवृत्ति बहुत मूल्यवान् है। तेरापंथ धर्मसंघ में आज भी प्राकृत और संस्कृत जीवित भाषा है। उनके अध्ययन, अध्यापन और रचना का प्रयोग अविच्छिन्न रूप में चालू है। पूज्य कालुगणी ने विद्याराधना का जो संकल्प बीज बोया, गुरुदेव श्री तुलसी ने जिसका संवर्धन किया, जो अंकुरण से पुष्पित और फलित अवस्था तक पहुंचा, वह आज और अधिक विकास की दिशाएं खोज रहा है। यह हमारे धर्मसंघ के लिए उल्लासपूर्ण गौरव की बात है। उस गौरव की अनुभूति में मुनि विमलकुमारजी की सहभागिता उपादेय बनी रहेगी।

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती
(लाडनूं) ७ अप्रैल १९९६

शुभाशंसा

संस्कृत और प्राकृत प्राचीन भाषाएं हैं। इनमें बहुमूल्य साहित्य भी प्राप्त होता है। जैन आगम प्राकृत भाषा में ग्रथित हैं। उनका व्याख्या-साहित्य भी कुछ प्राकृत भाषा में है। संस्कृत में भी वह विपुल मात्रा में है। आज भी पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ के नेतृत्व में हमारे संघ में साहित्य का निर्माण हो रहा है।

मुनि श्री विमलकुमारजी संस्कृत और प्राकृत भाषा के विज्ञ सन्त हैं। जैन आगमों के सम्पादन आदि कार्यों के साथ भी वे वर्तमान में जुड़े हुए हैं। पहले भी इनकी कई पुस्तकें सामने आई हैं। प्रस्तुत कृति 'पाइयपच्चूसो' मुनि श्री के तीन प्राकृत काव्यों से संवलित एक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ प्राकृत पाठकों के लिए उपयोगितापूर्ण सिद्ध हो। लेखक और भी नए-नए ग्रन्थों का निर्माण करते रहें, अपनी प्रतिभा का उपयोग करते रहें।

जैन विश्व भारती
१ अप्रैल १९९६,

महाश्रमण मुनि मुदित
महावीर जयन्ती

समप्पणं

जेहिं पसत्थो विहिओ पहो मे,
जेहिं य मज्झं य कयो विगासो ।
तेसिं य पाएसु य भत्तिपुव्वं,
अप्पेमि अप्पं य इणं य कव्वं ॥

स्वकथ्य

विक्रम संवत् २०३२ का चातुर्मासिक प्रवास करने जब मैं ग्वालियर (मध्यप्रदेश) की ओर प्रस्थान कर रहा था तब गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने मुझे प्राकृत भाषा के विशेष अध्ययन की ओर प्रेरित किया। उस समय तक मेरा प्राकृत भाषा में महज प्रवेश मात्र था, गहन अध्ययन की अपेक्षा थी। गुरुदेव की प्रेरणा से मैंने इस दिशा में कदम रखे। संयोगवश ग्वालियर दो चातुर्मास हुए। उस समय अध्ययन का क्रम चलता रहा।

काव्य प्रेरणा

वि.सं. २०३४ का चातुर्मासिक प्रवास जोधपुर करने के लिए गुरुदेव ने मुझे मुनि श्री ताराचंदजी के साथ भेजा। हम लोग जोधपुर की ओर जा रहे थे। मार्ग में मैं प्रतिदिन प्राकृत भाषा में एक या दो श्लोक बनाता और मुनि श्री को दिखला देता। एक दिन मुनि श्री ने मुझे प्रेरणा देते हुए कहा—तुम प्रतिदिन प्राकृत भाषा में श्लोक तो बनाते ही हो, यदि किसी कथानक का आधार लेकर बनाओ तो सहज ही काव्य का निर्माण हो जायेगा। मुनि श्री की प्रेरणा मेरे अंतःकरण में लग गई। मैंने किसी ऐतिहासिक कथानक को ही आधार बनाकर श्लोक रचना करने का विचार किया। उस समय मेरे पास दो ऐतिहासिक कथानक लिखे हुए थे– ललितांग कुमार और बंकचूल। मैंने सर्वप्रथम ललितांग कुमार के ही कथानक को आधार बनाया और श्लोक रचना प्रारंभ कर दी। मैं जितने भी श्लोक बनाता उसे मुनि श्री को दिखला देता। मुनि श्री को मेरी रचना पसंद आ गई। इस प्रकार ललियंग चरियं का निर्माण हो गया, यह मेरी प्राकृत भाषा में सर्वप्रथम रचना है।

मुनि श्री की वह अंतः प्रेरणा अनेक वर्षों तक मुझे काव्य-निर्माण की ओर प्रेरित करती रही और वर्तमान में भी कर रही है। जिसके फलस्वरूप ललियंगचरियं, बंकचूलचरियं, देवदत्ता, सुबाहुचरियं, पएसीचरियं, मियापुत्तचरियं इत्यादि पद्य काव्यों का निर्माण हुआ।

कृति परिचय

प्रस्तुत कृति 'पाइयपच्चूसो' में मेरे तीन काव्यों का समावेश है- बंकचूलचरियं, पएसीचरियं और मियापुत्तचरियं।

बंकचूलचरियं - यह प्राचीन ऐतिहासिक कथानक पर आधारित चरित्र काव्य है। इसका आधार जैन कथाएं हैं। इसके नौ सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग भिन्न-भिन्न छंदों में आबद्ध है। इस काव्य की रचना वि.सं.२०३५ अजमेर में हुई।

पएसीचरियं - यह काव्य जैन आगम 'रायपसेणइय' के आधार पर रचित है। इसके चार सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग भिन्न-भिन्न छंदों में आबद्ध है। इसकी रचना वि.सं. २०३८ लाडनूं में हुई।

मियापुत्तचरियं - यह काव्य जैन आगम 'विवागसुयं' के आधार पर रचित है। इसके तीन सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग भिन्न-भिन्न छंदों में आबद्ध है। इसका निर्माण वि.सं. २०४० सरदार शहर में हुआ।

इन तीनों काव्यों का हिन्दी अनुवाद स्वयं मैंने ही किया है। प्रत्येक काव्य में समागत शब्दों का अर्थ तथा हेमचंद्राचार्य कृत प्राकृत व्याकरण के सूत्रों का प्रमाण भी पादटिप्पण में दे दिया गया है जिससे विद्यार्थियों का व्याकरण विषयक ज्ञान भी सुदृढ बने। कहीं-कहीं समागत शब्दों के प्रमाण के लिए महाकवि धनपाल विरचित पाइयलच्छीनाममाला का भी उद्धरण दिया गया है। प्राकृत व्याकरण का संकेत चिन्ह है – प्रा.व्या.।

गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी तथा आचार्य श्री महाप्रज्ञ के प्रति मैं किन शब्दों में आभार व्यक्त करूं, उनकी मंगल सन्निधि, प्रेरणा और मार्गदर्शन मुझे सतत गतिशील बनाये रखता है।

इन काव्यों के निरीक्षण में मुनि श्री दुलहराजजी तथा डॉ. सत्यरंजन बनर्जी (प्रोफेसर, कलकत्ता विश्वविद्यालय) का मुझे मार्गदर्शन तथा सहयोग मिला, अतः मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं। डॉ. सत्यरंजन बनर्जी ने मेरी दोनों पुस्तकों - पाइयपच्चूसो और पाइयपडिबिंबो की भूमिका एक साथ लिखी है। अतः उसे दोनों पुस्तकों में दिया गया है।

इन काव्यों की प्रतिलिपि करने में मुझे मुनि श्रेयांसकुमारजी का सहयोग मिला अतः उनके प्रति भी मैं अपनी मंगल भावना व्यक्त करता हूं।

मुनि श्री नवरत्नमलजी, सुमेरमलजी 'सुदर्शन', ताराचंदजी, हीरालालजी तथा धर्मरुचिजी का भी मैं आभारी हूं जिनका सहयोग मुझे मिलता रहे।

— मुनि विमलकुमार

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)
ता. २५ मार्च, १९९६

पुरोवाक्

मुनि विमलकुमार जी प्रणीत दो प्राकृत काव्य-'पाइयपच्चूसो और पाइयपडिबिंबो' मैंने पढा है। इसे पढ करके मुझे बहुत हर्ष हुआ। मैं इसलिए आनन्दित हूँ कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में एक जैन मुनि द्वारा लिखित दो प्राकृत काव्य प्राकृत साहित्य में अलंकार स्वरूप होगा। जैसे पुराने जमाने में मुनि लोग लिखते थे वैसे विमलकुमार जी ने भी लिखा है। इसलिए मैं मुनि श्री की प्रशंसा करता हूँ। इस काव्य ग्रन्थ को पढने से प्रतीत होता है कि वही हजारों साल पहले वाला काव्य पढ रहा हूँ। अतः हम सभी कृतज्ञ हैं मुनि श्री के। आशा करता हूं कि भविष्य में भी आप ऐसा काव्य ग्रन्थ लिखकर प्राकृत साहित्य को समृद्ध करेगें।

इन दो प्राकृत ग्रन्थों में छह आख्यान हैं। ये सभी आख्यान प्राकृत और जैन साहित्य के उपजीवी हैं अर्थात् जैन धर्म और अनुशासन में यह आख्यान भाग बहु उपयोगी है। अतः मुनि विमलकुमार जी को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

पाइयपच्चूसो में तीन आख्यान हैं -

(१) बंकचूलचरियं

(२) पएसीचरियं

(३) मियापुत्तचरियं

ये तीनों आख्यान जैन साहित्य में प्रसिद्ध हैं। 'बंकचूलचरियं' नौ सर्गों में समाप्त हुआ है। आख्यान भाग बहुत ही प्रसिद्ध है, अतः आख्यान भाग देने की जरूरत नहीं है। लेकिन इसका वैशिष्टय ऐसा है जो आजकल के काव्य और प्राकृत काव्य में दिखाई नहीं देता। मुनि श्री ने जिस छंद में उल्लिखित हुआ है उसका भी उल्लेख किया है। जैसे - आर्या और इन्द्रवज्रा आदि। और भी एक विशेषता है मुनि श्री ने बीच बीच में प्राकृत सूत्रों का उल्लेख कर किस प्राकृत शब्द को कैसे बनाया है वह भी पाद टीका में दिया है। इसलिए ये काव्य प्राकृत भाषा सीखने के लिए बहुत मूल्यावान् हो गए हैं। केवल आख्यान भाग नहीं अपितु प्राकृत भाषा का भी ज्ञान होगा। इसके साथ-साथ में हिन्दी अनुवाद भी दिया है इसलिए ये काव्य एक स्वयं शिक्षक पाठमाला की तरह काम करेगें अर्थात् बिना शिक्षक के ये काव्य पढ़कर आदमी लोग प्राकृत भाषा में ज्ञान लाभ कर सकते हैं।

दूसरा आख्यान भाग है पएसीचरियं। यह काव्य चार सर्ग में समाप्त हुआ है। इसका भी मूल प्राकृत और हिन्दी अनुवाद मुनि श्री ने किया है। बंकचूलचरियं की तरह इसकी भी पादटीका में प्राकृत सूत्र का उल्लेख कर पदसाधन किया है। यह कथा काव्य भी जैन कथा काव्य में प्रसिद्ध हैं।

पाइयपच्चूसो का अन्तिम भाग है मियापुत्तचरियं। यह भी तीन सर्ग में समाप्त हुआ है। इसमें मूल काव्य प्राकृत भाषा में है। इसका भी हिन्दी अनुवाद हुआ है। मियापुत्तचरियं आगम साहित्य में अति प्रसिद्ध है परन्तु मुनि श्री ने इसकी रचना शैली ऐसी बनाई है कि यह नया काव्य बन गया है। कहानी में नाम सादृश्य है लेकिन रचना में कला– कौशल अलग है। इसलिए विमलकुमार जी का 'मियापुत्तचरियं' एक अपूर्व काव्य है।

द्वितीय काव्यग्रंथ 'पाइयपडिबिंबो' में भी तीन आख्यान हैं। यथा - ललियंग चरियं, देवदत्ताचरियं और सुबाहुचरियं। ये तीनों आख्यान भाग भी जैन साहित्य में प्रसिद्ध हैं। नामसादृश्य से ऐसा प्रतीत होना नहीं चाहिए कि विमल मुनि का अपूर्व कला कौशल इसमें उपलब्ध नहीं होता परन्तु पुराने आख्यायिका से आख्यान भाग लेने पर भी इसका कला कौशल, वर्णन– माधुर्य, शब्दचयन और वचन में ऐसा पांडित्यपूर्ण है कि पुराने काव्य ग्रन्थ से भी इसकी रचना अधिक मधुरिमा युक्त है।

ललियंगचरियं चार पर्व में समाप्त है। मूल के साथ इसका भी हिन्दी अनुवाद किया गया है। वैसे देवदत्ता चरियं भी पांच सर्ग में हिन्दी अनुवाद के साथ लिपिबद्ध हुआ है सुबाहु चरियं तीन पर्व में समाप्त है। इसका भी हिन्दी अनुवाद है।

इन तीनों प्राकृत काव्यों में पाइयपच्चूसो की तरह टिप्पणी में प्राकृत सूत्रों का उल्लेख पूर्वक पदसाधन किया गया है। मेरी ऐसी आशा है कि इन दो काव्य ग्रन्थों में जो छह आख्यान भाग है वह प्राकृत भाषा सीखने के लिए बहुत उपयोगी होगा। इसका कारण यही है कि मुनि श्री की भाषा सरल,स्निग्ध और मधुर है। कठिन शब्दों से परिपूर्ण नहीं है और ज्यादा से ज्यादा समासबद्ध शब्द भी नहीं है। यद्यपि ये आधुनिककालीन रचना हैं, तथापि पढने पर मालूम होता है कि ये पुराने जमाने की रचना हैं। कवित्व शक्ति मुनि श्री में बहुत है। बीच-बीच में प्रवचन की तरह काफी सूक्तियों का प्रयोग किया गया है।

बीसवीं शताब्दी में प्राकृत भाषा में ऐसा एक महत्वपूर्ण आख्यान काव्य लिखना बहुत ही कठिन है। विमल मुनि ने इस वस्तु को सरल कर दिया है। इनकी एक काव्य दृष्टि है। पढने पर मालूम होता है कि इसका जो छन्द है उसमें काफी लालित्य है। चरित्र चित्रण में इनकी अच्छी पकड़ है। काव्यसुधा अवर्णनीय है। मैं केवल यही कह सकता हूँ विमल मुनि की प्रतिभा असाधारण है। काव्य रचना भी अपूर्व है।

जैन मुनि लोग कहानियां रचने में बहुत ही पारदर्शी हैं। महावीर के समय से (छट्ठी शताब्दी ईसापूर्व) यह धारा प्रवाहित हो रही है। जैन आगम ग्रन्थों में उनकी जो टीका है उसमें और प्रबंधादिजातिय कोष ग्रन्थ में ऐसा बहुत बौद्ध साहित्य और कहानियां है जिसे पढकर हम लोगों को बहुत हर्ष होता है। केवल जैनियों में नहीं अपितु संस्कृत और बौद्ध साहित्य में

भी बहुत आख्यान मंजरी है । विमल मुनि के इन छह आख्यान काव्य पढने से मालूम होता है कि यही धारा प्राचीन काल से अभी तक चल रही है । इसलिए संक्षेप में इसका परिचय देना प्रासंगिक मालूम होता है ।

संस्कृत साहित्य तथा प्राचीन भारतीय साहित्य कथानक मंजरी से समृद्ध है। यथा-पूरूरवा-उर्वर्शी, यमयमी, विश्वमित्र सतद्रु-विपाशा आदि बहुत कहानियों से हम परिचित हैं । विविध कथा प्रसंगों में वैदिक ब्राह्मण साहित्य में भी बहुत कहानियां हैं । किंपुरूष, वित्रासुर, शुनः शेफ इत्यादि आख्यायिकाओं से हम लोग सुपरिचित हैं । शतपथ ब्राह्मण की मनुमत्स्य कथा विश्वप्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में भी छोटी-छोटी कहानियां हैं जो आज भी बहुत उपादेय हैं । मंधाता, यमाती, धुन्धुमार, नल, नहुष आदि कहानियां भारतीय साहित्य में अमर हैं । केवल संस्कृत साहित्य ही नहीं बल्कि बौद्ध और जैन साहित्य में भी कथानक मंजरी सुप्रसिद्ध है । पाली भाषा में जातक अथवा जातकट्ठ कहा और बुद्ध संस्कृत में महावस्तु, ललितविस्तर, जातकमाला, दिव्यावदान आदि ग्रन्थ आख्यान मंजरी से समृद्ध है ।

जैनियों में भी आख्यान मंजरी बहुत ही उपलब्ध है । जैन आगम ग्रन्थ में उनकी जो टीका है उसमें जैन धर्म को विशद करने के लिए बहुत कहानियों की अवतारणा की गई है । हर्मन याकोबी ने उत्तराध्ययन की टीकाओं में जो आख्यायिका है उसका संकलन करके प्रकाशित किया है । (Selected Narratives in Maharastra, Lipzig १८८६)

ऊपर लिखित आख्यायिका केवल प्रासंगिक है अर्थात् धार्मिक विषय को स्पष्टीकरणार्थ आख्यायिका की अवतारणा की गई है । इसी प्रसंग में ये सब कहानियां रचित हुई हैं । किन्तु बाद में संस्कृत, प्राकृत और पाली भाषा में हिन्दु, जैन और बौद्धों ने बहुत ही कहानियों की रचना की है । पंचतंत्र अथवा हितोपदेश बहुत ही प्रसिद्ध है । ये दोनों तो विदेशी भाषाओं में अनुवादित भी हुए हैं । इसके अलावा शुकसप्तति, वेतालपंचविंशति, विक्रमचरित्र, चतुरवर्गचिंतामणि, पुष्पपरीक्षा, भोजप्रबन्ध, उत्तमकुमारचरित्रकथा, चंपक श्रेष्ठीकथा, पालगोपालकथा, सम्यकत्व कौमुदी इत्यादि आख्यान ग्रंथ संस्कृत तथा विश्वसाहित्य में सुप्रसिद्ध हैं । पैशाची भाषा में लिखित अधुनालुप्त गुणाढ्य की वृहत्कथा ग्रन्थ का सार अवलम्बन करके बुद्धस्वामी ने वृहत्कथाश्लोक संग्रह की रचना की है । इसके बाद क्षेमेन्द्र वृहद् कथा मंजरी एवं सोमदेव का कथासरित्सागर रचित हुआ था। कथा संग्रह साहित्य में मेरुतुंग का प्रबंधचिंतामणि (१३०६ A.D), राजरामेश्वरसूरि का प्रबन्ध कोष (१३४० A.D) उल्लेख योग्य है । इसके अलावा जैनियों ने कथानक साहित्य का सृजन किया है । इस तरह साहित्य का मूल उद्योक्ता जैन सम्प्रदाय है ।

कथानक शब्द का अर्थ छोटी कहानियों का पिटारा है। कथा का आनक अर्थात् पेटिका है। यद्यपि कथानक शब्द साहित्य में सुप्रचलित है, तथापि अलंकारियों ने साहित्य के विभाजन के रूप में इसका उल्लेख नहीं किया है। किन्तु अग्निपुराण (३३७-२०) में गद्य साहित्य का विभाजन रूप से कथानिका, परिकहा और खण्ड कथा का उल्लेख है। आनन्दवर्धन धन्यालोक में (३.७) में उपर्युक्त विभाजन के साथ सरल कथा करके और भी एक विभाजन किया गया है। अभिनवगुप्त की टीका में इसकी विशद व्याख्या की गई है। लेकिन जैनियों ने जो कथानक साहित्य की सृष्टि की है वह तो सम्पूर्ण अलग तरह की है। मूलतः संग्रह के रूप से कथानक शब्द का व्यवहार किया गया है।

जैनियों ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में गद्य और पद्य में बहुत ही कहानियां, आख्यान और उपाख्यान लिपिबद्ध करके भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। केवल संस्कृत और प्राकृत भाषा ही नहीं बल्कि आधुनिक प्रान्तीय भारतीय भाषा में भी इसका एक अभावनीय संकलन दृष्ट होता है। इसलिए प्राचीन गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी में बहुत ही कथानक आख्यायिका का समावेश है। केवल भारतीय आर्यभाषा में ही नहीं अपितु प्राचीन तमिल, कन्नड़, तेलगु, मलयालम इत्यादि भाषा में भी बहुत ही जैन कहानियां मिलती हैं। इस प्रकार के साहित्य को संक्षेप में लोक साहित्य भी बोल सकते हैं। साधारणतया इस सब साहित्य का रचना काल त्रयोदश शताब्दी से शुरू हुआ है। गद्य और पद्य इस किस्म की कहानियों के वाहन है।

अभी तक हम लोग यह मानते हैं– जैनियों के बीच में सबसे जनप्रिय प्राचीन साहित्य है– कालकाचार्य कथानक। इस काव्य के रचयिता और किस समय में लिखा हुआ है, यह हम लोगों को अभी तक मालूम नहीं है। साधारणतः कल्पसूत्र पाठ के अवसान में जैनियों ने इस काव्य की आवृत्ति की है। राजा कालक किस कारण से और किन भावों से जैन धर्म में दीक्षित हुए हैं इसका विवरण इस काव्य में है। इस काव्य को छोड़कर और भी बहुत काव्य राजा कालक के विषय पर रचित हुए है। इस तरह कथानक साहित्य, कथाकोष साहित्य नाम में भी विशेष भाव में परिचित है। हरिसेनाचार्य (९३१/३२ A.D) वृहत् कथाकोष (संस्कृत में), श्री चंद्र का (९४१/९७ A.D) कथाकोष अपभ्रंश में, दशम शताब्दी में भद्रेश्वर का प्राकृत भाषा में लिखा हुआ कथावली और रामशेखर का प्रबन्धकोष इस प्रसंग में बहुत उल्लेखनीय है। सोमचंद्र का (१४४८ A.D) कथामहोदधि संस्कृत और प्राकृत में १५७ आख्यायिक युक्त है। हेमविजयगणी (१७०० A.D) कथारत्नाकर में २५८ आख्यायिका हैं। यह ग्रन्थ मूलतः संस्कृत भाषा में लिखा हुआ है, किन्तु फिर भी इसमें महाराष्ट्री, अपभ्रंश, प्राचीन हिन्दी और गुजराती भाषा का निदर्शन मिलता है। इसके अलावा और भी बहुत कथानक ग्रन्थ हैं जिसमें अपूर्व और अद्‌भुत आख्यायिका का समावेश है। इसमें वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि

का कथाकोष (२३१ गाथा), देवभद्र का (1101 A.D) कथाकोष, शुभशील का कथाकोष (अपभ्रंश में), सारंगपुर निवासी हर्षसिंह गणी का कथाकोष, विनयचंद्र का कथाकोष (१४० गाथा में), देवेन्द्रगणी का कथामणि कोष इत्यादि ग्रन्थ प्रधान और उल्लेखयोग्य है।

मुनि विमलकुमार जी का कथानक काव्य इसी परम्परा का एक समायोजन है। जैसे ऊपर लिखित कवियों ने अपना काव्य लिखकर यश प्राप्त किया उसी तरह मुनि विमलकुमार जी भी ये छह आख्यान काव्य लिखकर उसी परम्परा से जुड़ गए हैं। विमलमुनि के साथ मेरा परिचय बहुत वर्षों से है। इनकी धी शक्ति, प्रज्ञा और रचना कौशल से मैं परिचित हूँ। कवित्व शक्ति इनमें स्वाभाविक है। कवि क्रान्तदर्शी और त्रिकालज्ञ होता है। इसी कारण वह दार्शनिक भी बन जाता है। इसीलिए हजारों वर्षों के पहले कवियों ने जो कुछ लिखा है वह आज भी आदरणीय और महत्वपूर्ण है। इसलिए राजतरंगीनी में कवि का एक सुंदर वर्णन किया गया है। कवि कौन हो सकता है ? जो - - - - -

कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः।
कवि प्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः॥

विमलमुनि इस विवरण के अनुसार सुप्रसिद्ध अतिक्रान्तकालजयी कवि है। इस छह आख्यान भाग में इनकी रचना शैली इतनी सरल, स्पष्ट और माधुर्यपूर्ण है कि पढने से मालूम होता है कि कवि ने जन साधारण के लिए ही काव्य लिखा है। यह काव्य प्राकृत भाषा के पठन और पाठन के लिए बहुत ही मूल्यवान् और उपयोगी है। बीच बीच में प्राकृत सूत्र उल्लेखपूर्वक पदसाधन दिया गया है इसलिए ये एक महत्वपूर्ण अवश्यपठनीय प्राकृत ग्रन्थ हैं।

मैं आशा करता हूँ कि ये ग्रन्थ पढकर प्राकृत शिक्षार्थी बहुत लाभान्वित होंगे। मैं यह भी आशा करता हूँ कि मुनि विमलकुमार जी भविष्य में इसी तरह काव्य ग्रन्थ लिखकर प्राकृत साहित्य को समृद्ध करेगें।

शुभम् अस्तु

दिनांक १५ मार्च १९९६
कलकत्ता विश्वविद्यालय

डॉ. सत्यरंजन बनर्जी
प्रोफेसर, कलकत्ता विश्वविद्यालय

विसयाणुक्कमो

१.	बंकचूलचरियं (सानुवाद)	१
२.	पएसीचरियं (सानुवाद)	७३
३.	मियापुत्तचरियं (सानुवाद)	१२१
४.	परिसिट्ठ (परिशिष्ट) कव्वागयसुत्तीओ (काव्यागत सूक्तियां)	१४७
५.	सद्दसूई (शब्दसूची) ।	१४९

कथा वस्तु

पुष्पचूल राजा विमल का पुत्र था। उसकी माता का नाम सुमंगला था। उसके एक बहिन थी जिसका नाम पुष्पचूला था। जब पुष्पचूल और पुष्पचूला तरुण हुए तब राजा ने योग्य जीवन साथी देखकर उनका विवाह कर दिया। पाणिग्रहण के कुछ समय पश्चात् पुष्पचूला के पति का स्वर्गवास हो गया। पुष्पचूला के शिर पर तीव्र वज्रपात-सा हुआ। राजा विमल और रानी सुमंगला उसे ससुराल से अपने महलों में ले आये। पुष्पचूला अपने माता-पिता के पास रहने लगी।

पुष्पचूल कुसंगति में पड़कर नगर में चोरी करने लगा। उसकी बहिन भी उसके इस कार्य में सहयोग करने लगी। जब नगरवासियों को इस बात का पता लगा तब उन्होंने उसे चोरी न करने की सलाह दी। किन्तु पुष्पचूल माना नहीं। तब उन्होंने पुष्पचूल, पुष्पचूला का नाम बदलकर बंकचूल और बंकचूला कर दिया। फिर कुछ शिष्ट व्यक्ति राजा के पास आये और नगर में हो रही चोरी का जिक्र कर कहा -- राजन्! दुःख है इसमें आपके पुत्र और पुत्री का भी हाथ है। राजा ने तत्काल बंकचूल को बुलाया और उसे नगर छोड़कर जाने का आदेश दे दिया।

बंकचूल अपने महल में आया और वहां से प्रस्थान करने लगा। उसके साथ उसकी बहिन तथा पत्नी भी जाने को उद्यत हो गई। बंकचूल उनके साथ नगर छोड़कर रवाना हो गया। चलते-चलते वह चोरों की एक बस्ती के समीप पहुंचा और वहां विश्राम करने लगा। चोरों के मुखिया ने उसे देख लिया। उसने बंकचूल से पूछा -- तूम कौन हो? तुम्हारे साथ ये दो स्त्रियां कौन हैं? बंकचूल ने कहा -- 'मैं राजा का लड़का हूं। मेरा नाम बंकचूल है। इन स्त्रियों में एक मेरी बहिन और एक पत्नी है। पिता ने चौर्य-कर्म में लिप्त होने के कारण मुझे नगर से निष्कासित कर दिया।' यह सुनकर चौराधिपति ने उसे अपने पास रख लिया। बंकचूल उन चोरों के साथ पुनः चोरी करने लगा। कालान्तर में चोरों के मुखिया की मृत्यु हो गई। सब ने मिलकर बंकचूल को अपना नेता बना लिया।

एक बार आचार्य चंद्रयश शिष्यों सहित सार्थ के साथ किसी स्थान पर चातुर्मास करने जा रहे थे। मार्ग में भयंकर वर्षा हुई। नदी, नालों में पानी भर गया। संयोगवश सार्थ का साथ छूट गया। आचार्य के सम्मुख अकल्पित स्थिति आ गई। उन्होंने परिस्थिति को देख निर्णय लिया कि अब आगे जाना असम्भव है,

अत: यहीं कहीं आसपास में किसी बस्ती में चातुर्मास योग्य स्थान की गवेषणा करनी चाहिए। ऐसा निश्चय कर वे स्थान की अन्वेषणा करते हुए बंकचूल की बस्ती में आये। बंकचूल ने उन्हें देखा और आने का कारण पूछा। आचार्य चंद्रयश ने समस्त परिस्थिति की जानकारी देते हुए चार मास तक रहने योग्य स्थान की याचना की। बंकचूल ने कहा— यह चोरों की बस्ती है। यदि आप यहां रहना चाहें तो रह सकते हैं। किन्तु एक शर्त है— आप यहां किसी को चार मास तक धर्मोपदेश नहीं देंगे। क्योंकि आप जिन वस्तुओं के परिहार का उपदेश देते हैं वे ही हमारी आजीविका का साधन है।

समयज्ञ आचार्य चंद्रयश ने बंकचूल का कथन स्वीकार कर लिया। बंकचूल ने उन्हें रहने के लिए स्थान दे दिया। आचार्य ने सभी शिष्यों को चातुर्मास पर्यन्त तत्रस्थ किसी व्यक्ति को उपदेश देने की मना कर दी। वे सभी स्वाध्याय, ध्यान में रत हो अपना समय व्यतीत करने लगे। शनै: शनै: पावस पूर्ण हुआ। आचार्य शिष्यों सहित विहार करने के लिए सज्जित हो बंकचूल के पास आये और कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोले— 'बंकचूल! अब हम प्रस्थान कर रहे हैं। तुम अपना स्थान संभाल लो।' बंकचूल आचार्य की प्रतिज्ञा-पालन से बहुत प्रभावित हुआ। वह उन्हें अपनी सीमा पर्यन्त छोड़ने आया। जब उसकी सीमा आ गई तब उसने आचार्य से निवेदन किया— अवसर आये तो हमें पुन: दर्शन देना। तब आचार्य चंद्रयश ने कहा— बंकचूल! हम तुम्हारे ग्राम में चार मास तक रहे। हमने कभी किसी को उपदेश नहीं दिया। आज यदि तुम्हारे सुनने की इच्छा हो तो कुछ सुनाएं। बंकचूल ने कहा— मेरे लिए जो शक्य हो वही कहें। आचार्य ने मानव जीवन का महत्व बताते हुए कहा— आज से तुम इन चार नियमों को ग्रहण कर लो-- (१) अनजाना फल नहीं खाना (२) सात-आठ कदम पीछे हटे बिना किसी पर प्रहार न करना (३) पटरानी को माता के समान समझना (४) कौवे का मांस न खाना।

बंकचूल ने इन नियमों को ग्रहण कर लिया। उसे नियमों पर दृढ़ रहने का उपदेश देकर आचार्य ने शिष्यों सहित वहां से विहार कर दिया। बंकचूल अपने स्थान पर आ गया।

एक दिन बंकचूल अपनी भील सेना सहित किसी ग्राम को लूटने के लिए रवाना हुआ। ग्रामवासियों को उसके आगमन की पहले ही सूचना मिल गई। वे अपनी बहुमूल्य वस्तुएं लेकर, घरों के ताला देकर अन्यत्र चले गये। जब बंकचूल

भील सेना सहित वहां पहुचा तब उसे सम्पूर्ण ग्राम जन-शून्य मिला । उसने अपने सैनिकों को ग्राम लूटने का आदेश दे दिया । वे घरों में गये, ताले तोड़े किन्तु किसी को कुछ नहीं मिला । आखिर खाली हाथ वे वहां से रवाना हो गये । मार्ग में सब भूख, प्यास से क्लांत हो एक स्थान पर विश्राम हेतु ठहर गये । कुछ भील फल लेने इधर-उधर गये । एक स्थान पर उन्हें सुगंधियुक्त और सुन्दर फलों की प्रचुर उपलब्धि हुई । वे उन्हें लेकर बंकचूल के पास आये और बोले— स्वामिन् ! इन फलों को आप भी खाएं और हमें भी खाने का निर्देश दें । यह सुनकर बंकचूल को अपने प्रथम नियम की स्मृति हो आई । उसने उनसे फलों का नाम पूछा । उन्होंने कहा—हम इनका नाम नहीं जानते हैं किन्तु सुगंधि से लगता है ये सब फल स्वादिष्ट हैं । बंकचूल ने कहा—मैंने आचार्य से नियम ग्रहण किया है कि जिस फल का नाम मालूम न हो उसे नहीं खाना । अत: मैं तो इन फलों को नहीं खाऊंगा और तुम्हें भी यही सलाह देता हूं कि इन्हें मत खाओ । किन्तु एक सेवक को छोड़कर किसी ने उसकी बात नहीं मानी । वे सब फल खाकर सो गये । कुछ समय बाद जब प्रस्थान करने का समय हुआ तब बंकचूल ने अपने सेवक (जिसने फल नहीं खाया था) से उन्हें उठाने को कहा । उसने आवाज दी किन्तु कोई नहीं जगा । उसने जाकर उठाने का प्रयास किया किन्तु कोई नहीं उठा । तब उसे लगा ये सब मर गये हैं । वह बंकचूल के पास आया और बोला—स्वामिन् ! ये सब तो मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं । बंकचूल को बहुत आश्चर्य हुआ । उसने अनुमान लगाया कि इनकी मृत्यु का कारण ये फल ही होने चाहिए । बंकचूल जहां फल लगे थे वहां आया । एक पथिक से उन फलों का नाम पूछा । उसने कहा - ये किंपाक फल हैं । ये देखने में सुन्दर तथा सुगंधियुक्त हैं किन्तु इनको खाने से व्यक्ति मर जाता है । बंकचूल को आचार्य की स्मृति हो गई । अहो ! उन्होंने आज मेरे प्राणों की रक्षा की है—ऐसा चिन्तन कर वह उनके प्रति श्रद्धानत हो गया । वहां से प्रस्थान कर बंकचूल अपने घर आया । जब वह घर पहुंचा तब रात्रि का एक प्रहर बीत चुका था । उसके मन में विचार आया -- आज मुझे अपनी पत्नी के चरित्र का निरीक्षण करना चाहिए । उसने गुप्तरूप से देखा उसकी पत्नी एक पुरुष के साथ सो रही है । क्रोधावेश में आकर उसने पत्नी को मारने के लिए तलवार खींची । उसी समय उसे अपने दूसरे नियम की स्मृति हो आई । वह सात-आठ कदम पीछे हटा । तलवार दरवाजे से टकरा गई । उसकी आवाज सुनकर उसकी बहिन बंकचूला (जो पुरुष वेश में सोई हुई थी) जग गई । भाई को आया हुआ देखकर वह उठी और स्वागत किया । बहिन

को पुरुषवेश में देखकर बंकचूल विस्मित हो गया। इसने पुरुषवेश क्यों धारण किया है? इत्यादि प्रश्न उसके मस्तिष्क में उभरने लगे। भाई को विस्मयान्वित देखकर उसने अपने पुरुषवेश धारण करने का प्रयोजन बताते हुए कहा—जब तुम यहां से चल गये तब तुम्हारी गुप्त गतिविधि का पता लगाने के लिए राज्य कर्मचारी नटवेष बनाकर आये। मैंने सोचा—यदि उन्हें मालूम हो जायेगा कि तुम यहां नहीं हो तो इस बस्ती को उजाड़ देंगे। अत: मैंने तुम्हारा वेश धारण कर उनका नाटक करवाया। जब वे गये तब प्रचुर रात्रि बीत गई थी। मैं थक गई और उसी वेश में भाभी के साथ सो गई। बंकचूला के मुख से समस्त वृत्तान्त सुनकर बंकचूल को पुन: आचार्य की स्मृति हो आई। यदि वे मुझे दूसरा नियम न दिलाते तो आज मेरी बहिन की मृत्यु हो जाती।

एक दिन बंकचूल राजमहल में चोरी करने के लिए गया। संयोगवश वह उसी कमरे में प्रविष्ट हुआ जहां रानी रहती थी। रानी ने उसे देख लिया। वह उसके रूप को देखकर कामातुर हो गई। उसने बंकचूल से पूछा -- तुम कौन हो, यहां क्यों आये हो? बंकचूल ने कहा—मैं चोर हूं, चोरी करने आया हूं। रानी ने कहा—यदि तुम मेरी बात मान लो तो तुम्हें यहां सब कुछ मिल सकता है। बंकचूल ने कहा—क्या? कामातुर रानी ने अपनी विकार भावना रखी। उसे सुनकर बंकचूल को अपने तीसरे नियम की स्मृति हो आई। उसने रानी के प्रस्ताव को नामंजूर करते हुए कहा—आप तो मेरी माता के समान हैं। रानी कुपित हो गई। उसने कहा—यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो जानते हो तुम्हारी क्या दशा होगी? बंकचूल ने कहा—जो भी हो, किन्तु आप मेरी माता के ही समान हैं। तब रानी ने अपने अंगों को क्षत, विक्षत कर वस्त्र फाड़ लिये और द्वारपाल को आवाज दी – देखो! मेरे महल में कौन आ गया? द्वारपाल आया और बंकचूल को पकड़ कर ले जाने लगा। जिस समय रानी बंकचूल से बात कर रही थी उसी समय राजा वहां आ गया। उसने गुप्त रूप से सब दृश्य देख लिया था। अत: द्वारपाल को संकेत किया कि इसे गाढ बन्धन से मत बांधना, प्रात: मेरे सम्मुख उपस्थित करना।

दूसरे दिन द्वारपाल बंकचूल को लेकर राजा के पास आया। राजा ने बंकचूल से रात्रिकालीन घटना पूछी। उसने सब यथार्थ बता दी। राजा ने परीक्षा करते हुए कहा—तुम साहसी हो, मेरे महलों में आये हो अत: तुम्हें रानी देता हूं। बंकचूल ने कहा—नहीं, रानी तो मेरी माता के समान हैं। तब राजा ने बात घुमाते

हुए कहा — तुमने मेरी रानी के साथ दुर्व्यवहार किया है अत: मृत्युदण्ड देता हूं। बंकचूल ने कहा—यह मुझे स्वीकार्य है किन्तु रानी नहीं। राजा बंकचूल से प्रभावित हुआ। उसने रानी को बुलाया और मृत्युदण्ड दे दिया। तब बंकचूल राजा के चरणों में गिर पड़ा और कहा—रानी मेरी मां के समान हैं अत: इसे मृत्युदण्ड न दें। राजा ने रानी को देश से निष्कासित कर दिया और बंकचूल को पुत्ररूप में अपने पास रख लिया। बंकचूल अपनी पत्नी और बहिन को भी वहां ले आया। उसे पुन: आचार्य की स्मृति होने लगी। वह उनके दर्शनों के लिए उत्कंठित हो गया।

एक बार आचार्य चंद्रयश ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए शिष्यों सहित उग्ग ग्राम में आये। बंकचूल को आचार्य के आगमन का पता चला। उसकी प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वह आचार्य के दर्शनार्थ गया। उसने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये। वह प्रतिदिन आचार्य की सन्निधि का लाभ उठाने लगा। एक बार शालिग्रामवासी श्रावक जिनदास आचार्य के दर्शनार्थ आया। साधर्मिकता के कारण बंकचूल की उसके साथ मित्रता हो गई। कालांतर में आचार्य चंद्रयश ने वहां से विहार कर दिया। बंकचूल धर्मजागरणा करता हुआ समय बिताने लगा।

एक बार कामरूपदेश के राजा ने वहां पर आक्रमण कर दिया। राजा ने बंकचूल को सेना सहित शत्रुओं के सम्मुख भेजा। उसने कुशलतापूर्वक युद्ध किया। शत्रु सेना पराजित हो गई किन्तु शत्रुओं के वाणों से उसके शरीर में घाव हो गये। बंकचूल अपने नगर आया। राजा के मन में अत्यन्त प्रसन्नता हुई। बंकचूल के शरीर को व्रण-पूरित देखकर उसने वैद्यों को बुलाया और उसे शीघ्र स्वस्थ करने का निर्देश दिया। वैद्यों ने चिकित्सा प्रारम्भ की। किन्तु सफलता नहीं मिली। तब एक वैद्य ने कहा— राजन्! यदि इन घावों में कौवे का मांस भर दिया जाए तो घाव भर सकते हैं। यह सुनकर बंकचूल को चौथे नियम की स्मृति हो आई। उसने कहा— मैंने पहले से ही आचार्य के समक्ष कौवे का मांस न खाने का नियम ले रखा है। राजा ने कहा— इस घावों में तो मांस भरने की बात है, खाने की नहीं। किन्तु बंकचूल इसके लिए तैयार नहीं हुआ। वह अपने नियम पर दृढ़ रहा। राजा ने उसे समझाने के लिए श्रावक जिनदास को शालिग्राम से बुलाया। उसने समस्त स्थिति का आकलन कर राजा से कहा— अन्य औषधि छोड़कर इसे धर्म रूपी औषधि दें। जिनदास ने बंकचूल के चारों ओर धार्मिक वातावरण बना दिया। अंतिम समय में उसने अनशन ग्रहण किया। शुभ भावों में मृत्यु को प्राप्त कर वह बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुआ।

मंगलायरणं

लोअम्मि[१] जस्स णामो, मंतरूवगो पच्चूहणासगो ।
तं देपेयं झाउं, णिअसुद्धमाणसे पइवलं ॥१ ॥
रएमि पाइअगिराअ, बंकचूलचरियं सिक्खप्पयं ।
सो गुरू होज्ज इमाअ, कव्वरयणाए साहिज्जो ॥२ ॥ (जुग्गं) ।

मंगलाचरण

१—२. जिनका नाम संसार में मंत्र रूप और विघ्ननाशक है उन दीपा-सुत (भिक्षु स्वामी) का मैं अपने पवित्र मन में प्रतिपल ध्यान करके प्राकृत भाषा में शिक्षाप्रद बंकचूल चरित्र की रचना करता हूँ । वे गुरुदेव मेरी इस काव्य रचना में सहायक हों (युग्म)

१. आर्याछंद, लक्षण— यस्या: प्रथमे पादे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थे पञ्चदश सार्या ॥

पढमो सग्गो

पुरा[२] एगम्मि णयरे, णिवसेइ विमलो णामो भूवई ।
णीइण्णू य णायवं, जणप्पिओ धम्माणुराई ।१ ॥

सक्कारेइ सज्जणा, दुज्जणाण सो देइ सया दंडं ।
अओ भीइं चइऊण, पया तत्थ णिवसेंति ससुहं ।२ ॥

राणी तस्स सुमंगला, भत्तुणो पयाणुयारी य धीरा ।
गंभीरा कज्ज-पडू, पियभासिणी मिउसहावा य ॥३ ॥

दाऊण समयोइयं, पइणो रज्जकज्जम्मि मंतणं सा ।
पालेइ स-कायव्वं, वड्ढावेइ से जसं सया ॥४ ॥

लहिऊण तं मोयए, वसुहावई पउरं सय-हियें सो ।
दाउं तं सक्कारं, वड्ढावेइ ताअ[३] गारवं ॥५ ॥

ताइ कुच्छीअ जाया, कालंतरे वे संताणा कमा ।
एगो रूववं सुओ, बीआ रूववई कण्णा य ॥६ ॥

लहेऊण संताणा, मोयए पिअर-हिअयं सययं ।
को ण मोयए लोए, लहिऊण घरम्मि संताणा ॥७ ॥

उच्छवं किच्चा तेसि, धरेइ भूवो णामधिज्जं तया ।
'पुप्फचूल' त्ति पुत्तस्स, 'पुप्फचूला' त्ति कणीअ किर ॥८ ॥

करेइ पालणं णेसि, दत्तावहाणेण राणी तया ।
भरेइ सुसक्कारा य, तेसिं हिअये पइवलं सा ॥९ ॥

माया च्चेअ सिक्खिआ, सच्चा भणियं ति विण्णपुरिसेहिं ।
ताअ दिण्णा विलुत्ता, ण होंति कयाइ सुसक्कारा ॥१० ॥

जाया सिक्खा-जुग्गा, जया ते पियरेहि तया पेसिया ।
पढिउं गुरुणो पासे, अत्थि णाणं तइयं णयणं ॥११ ॥

---

२. आर्याछंद ।

३. गौरवम् (आच्च गौरवे - प्रा. व्या. ८ ।१ ।१६३) ।

प्रथम सर्ग

१. प्राचीन काल में एक नगर में विमल नामक राजा रहता था। वह नीतिज्ञ, न्यायवान्, जनप्रिय और धर्मानुरागी था।

२. वह सज्जनों का सत्कार करता था और दुर्जनों को सदा दण्ड देता था। अत: जनता उसके राज्य में निर्भय होकर सुखपूर्वक रहती थी।

३. सुमंगला उसकी रानी थी। वह पति के पद का अनुगमन करने वाली थी। वह धीर, गंभीर, कार्य-दक्ष, प्रियभाषिणी और मृदु स्वभाव वाली थी।

४. वह पति के राज्य-कार्य में समयोचित मंत्रणा देकर अपने कर्तव्य का पालन करती थी और उसके यश को सदा बढ़ाती थी।

५. राजा उसे प्राप्त कर अपने हृदय में बहुत प्रसन्न रहता था। वह उसे सम्मानित कर उसके गौरव को बढ़ाता था।

६. कालान्तर में उसकी कुक्षि से एक रूपवान् पुत्र और एक रूपवती पुत्री का जन्म हुआ।

७. संतान को प्राप्त कर माता-पिता का हृदय सदा प्रमुदित रहता था। घर में संतान पाकर कौन व्यक्ति प्रसन्न नहीं होता?

८. राजा ने उत्सव कर पुत्र का नाम पुष्पचूल और पुत्री का नाम पुष्पचूला रखा।

९. रानी उसका सावधानीपूर्वक पालन करती थी और उसमें प्रतिपल सद्संस्कारों को भरने का प्रयत्न करती थी।

१०. विज्ञ पुरुषों ने माता को ही सच्ची शिक्षिका कहा है। उसके दिए हुए सद्संस्कार कभी विलीन नहीं होते।

११. जब वे पढ़ने योग्य हुए तब माता-पिता ने उन्हें गुरु के पास अध्ययन करने के लिए भेजा। क्योंकि ज्ञान ही तीसरा नेत्र है।

णेंति विणीयभावेण, ते झत्ति गुरुणा य विविहं णाणं ।
विणीयो लद्धुमरिहइ, गुरुणो सविहे सया णाणं ॥१२॥
लहित्ता गुरुणो पासे, सिक्खं जया गया जोव्वणं ता ।
चिंतेति पियरा तेसि, वढ्ढउं पाणिग्गहणं तया ॥१३॥
अप्पवयम्मि य करेंति, जे संताणाणमुवयामं णरा ।
मोरउल्ला[४] ते तेसि, कुणेंति ओ[५] बलस्स विणासं ॥१४॥
अप्पवयम्मि करिऊण, संताणाणमुव्वाहं य मच्चा ।
पाडेंति बहुं भारं, ते तेसिं सिरम्मि णिच्छियं ॥१५॥
अओ सव्वहा दाणिं, गरहणिज्जो बालविवाहो अत्थ ।
तेण बालविहवाणं, संखा वि हु वुड्ढिं[६] वच्चेइ ॥१६॥
विलोऊण रायण्णं, सत्तगुणसंजुत्तं[७] णिवेण तया ।
कयो तेण समं दुत्ति, उवयामो पुप्फचूलाए ॥१७॥
दिण्णं बहुं पाहुडं, णिअसत्तीए भूवेणं ताए ।
को ण देइ सइ जणयो, बलाणुरूवं णिअकण्णाण ॥१८॥
परं जाइउं य णेंति, अज्ज मणुया धणं कणी—तायेण ।
तेण भारहूआ किर, मायापियरस्स कये कणी ॥१९॥
एयारिसी य पउत्ती, संपयं गरहणिज्जा हु लोअम्मि ।
ताए दुप्परिणामो, आगओ समेसिं सम्मुहे ॥२०॥
दट्ठूण एगं कणिं, सत्तगुणजुत्तं य राइणो तया ।
करेइ पाणिग्गहणं, ताअ समं पुप्फचूलस्स ॥२१॥
इत्थं काऊण णेसिं, उवयामं भूवइणा दक्खेणं ।
पालियं सांसारियं, संपइ तेण णिअकायव्वं ॥२२॥
लोइयववहारे जे, कहेंति धम्मं मूढमइणो णरा ।
ते णाइं विआणेंति, धम्मरहस्सं किंचि गूढं ॥२३॥
पालिऊण स-कयव्वं, संतुस्सेइ भूवई माणसम्मि ।
कुणेइ पुत्तेण समं, सो तयाणिं ससुहं रज्जं ॥२४॥

पढमो सग्गो समत्तो

---

४. व्यर्थम् (मोरउल्ला मुधा - प्रा. व्या. ८।२।२१४)। ५. ओ सूचना पश्चात्तापे (प्रा. व्या. ८।२।२०३)।
६. वृद्धिम् (दग्धविदग्धवृद्धिवृद्धे ढः — प्रा. व्या. ८।२।४०)।
७. कुलञ्च शीलञ्च सनाथता च, विद्या च वित्तञ्च वपुर्वयश्च ।
वरे गुणाः सप्त विलोकनीया - स्ततः परं भाग्यवशा हि कन्या ॥

१२. उन्होंने नम्रतापूर्वक गुरु से विविध प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया। विनीत व्यक्ति ही गुरु से ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

१३. जब वे गुरु के पास शिक्षा प्राप्त कर तरुण हुए तब माता-पिता उनके विवाह की चिन्ता करने लगे।

१४. जो व्यक्ति लघु वय में ही संतानों का विवाह कर देते हैं वे व्यर्थ ही उनकी शक्ति का नाश करते हैं।

१५. वे अल्प वय में ही संतानों का विवाह करके उनके शिर पर निश्चित ही बहुत भार डाल देते हैं।

१६. अत: वर्तमान में बाल विवाह निंद्य माना गया है। उससे बाल-विधवाओं की संख्या बढ़ती है।

१७. राजा ने सात गुणों से युक्त एक राजपुत्र को देखकर उसके साथ पुष्पचूला का विवाह कर दिया।

१८. राजा ने अपनी शक्ति के अनुसार उसे दहेज दिया। कौन माता-पिता अपने सामर्थ्य के अनुसार अपनी कन्या को नहीं देता?

१९. लेकिन आजकल मनुष्य कन्या के पिता से धन मांग कर लेते हैं। इसलिए कन्या माता-पिता के लिए भारभूत हो गई है।

२०. यह प्रवृत्ति निश्चित ही संसार में गर्हणीय है। इसके दुष्परिणाम सबके सामने आ गए हैं।

२१. सात गुणों से युक्त एक कन्या को देखकर राजा ने उसके साथ पुष्पचूल का विवाह कर दिया।

२२. इस प्रकार उन दोनों का विवाह कर राजा ने अपने लौकिक कर्तव्य का पालन किया।

२३. जो व्यक्ति लौकिक व्यवहार में धर्म कहते हैं वे मूढ व्यक्ति धर्म का गूढ रहस्य नहीं जानते।

२४. अपने कर्त्तव्य का पालन कर राजा मन में संतुष्ट था। वह पुत्र के साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

प्रथम सर्ग समाप्त

बीओ सग्गो

कुव्वेइ[1] का का मणुओ ण कप्पणा, लोए सया भो !णिअगम्मि जीवणे ।
केसिंचि तासुं य णराण सत्थआ, केसिंचि ता होंति ण हंद सत्थआ ॥१ ॥

जेसिं य णो होंति सहला य कप्पणा, लोए वहुत्ते य कये वि उज्जमे ।
ते देंति दोसं भवियव्वयं सया, ताए य अग्गं ण चलेइ तस्स किं ॥२ ॥

सत्ती विणट्ठा करिऊण सा समा, कुव्वेइ मच्चाण सया अचिंतियं ।
काउं समत्थो अण किं वि माणवो, वंदेंति सव्वे भवियव्वयं अओ ॥३ ॥

पच्छा य पाणिग्गहणस्स माणसे, सा पुप्फचूला विविहा य कप्पणा ।
कुव्वेइ जीअस्स कये य पुक्कला, अण्णं य दंसेइ परं य तं विही ॥४ ॥

आगम्म कालो सहसा य जोव्वणे, पाणा य ताए य हरेइ भत्तुणो ।
रुवेंति[2] सव्वे सयणा तया वि सो, मुंचेइ कालो अण तं य णिद्दयो ॥५ ॥

दट्ठूण कालं णिअगं पइं गयं, सा पुप्फचूला पउरं य माणसे ।
झंखेइ[3] धिज्जं[4] चइऊण अप्पयं, भत्ता सहाओ पमयाण सासयं ॥६ ॥

रुच्चस्स[5] मच्चुं सुणिऊण संपयं, आगम्म ताए णिलयम्मि तक्खणं ।
दंसेंति दुक्खं हिअयस्स बंधवा, तं देंति ते भो ! पउरं य संतणं ॥७ ॥

भोत्तुं य दुक्खं भुवणम्मि कस्स को, सक्को इयाणिं मणुयो हु विज्जए ।
दाउं परं सो णिअगं य संतणं, अण्णस्स दुक्खं हलुअं[6] करेइ भो ! ॥८ ॥

जामायरो मज्झ गओ य संपयं, मच्चुं ति सोच्चा पिअराण माणसे ।
दुक्खस्स तिव्वो पहरो य जायए, णो को वि मच्चो भणिउं य पच्चलो ॥९ ॥

हे मच्चु ! किं णं अहुणा तए कडं, किं किंचि दाणिं ण दया समागया ।
पुत्तिं य अम्हं[7] विहवं य जोव्वणे, काऊण तं किं य हसेसि णिद्दयो ! ॥१० ॥

कालो य कूरो य तुमं य णिच्छियं, वम्फेंति[8] णाइं य अओ य माणवा ।
कूरत्तणेणं हुविउं ण पक्कलो[9], णो को वि कस्सावि पियो य माणवो ॥११ ॥

---

(१) छंद—इंद्रवंशा (लक्षण-स्यादिन्द्रवंशा ततजैरसंयुतैः) । (२) रुदन्ति (रुदनमोर्वः-प्रा.व्या. ८/४/२२६) ।
(३) विलपति (विलपेर्झंख वडवडौ-प्रा.व्या. ८/४/१४८) । (४) धैर्यम् (ईद् धैर्ये-प्रा.व्या. ८/१/१५५) ।
(५) पत्युः । (६) लघुकम् (प्रा.व्या. ८/२/१२२) । (७) मम (८) कांक्षन्ति (प्रा.व्या. ८/४/१९२) ।
(९) समर्थः (पक्का सहा समत्था य पक्कला पच्चला पोढा—पाइयलच्छीनाममाला ५२) ।

द्वितीय सर्ग

१. मनुष्य अपने जीवन में सदा क्या-क्या कल्पनाएं नहीं करता ? उनमें कुछ मनुष्यों की कल्पनाएं सार्थक होती हैं, कुछ की नहीं ।

२. प्रचुर उद्यम करने पर भी जिन मनुष्यों की कल्पनाएं सार्थक नहीं होती वे भवितव्यता को दोष देते हैं क्योंकि भवितव्यता के आगे मनुष्य की कुछ नहीं चलती ।

३. भवितव्यता मनुष्य की समस्त शक्ति को नष्ट कर उसका अचिंतित कर देती है । तब मनुष्य कुछ नहीं कर सकता । अत: सभी भवितव्यता को नमस्कार करते हैं ।

४. विवाह के बाद पुष्पचूला मन में अपने जीवन के लिए अनेक कल्पनाएं करती है । पर विधि उसे अन्य ही दिखाती है ।

५. अचानक काल आकर यौवनावस्था में उसके पति के प्राणों का हरण कर लेता है । सभी स्वजन अश्रुविलाप करते हैं । पर निर्दय काल उसे नहीं छोड़ता ।

६. अपने पति को मरा हुआ देखकर वह पुष्पचूला धैर्यहीन होकर प्रचुर विलाप करती है । क्योंकि पति ही स्त्रियों का सहायक होता है ।

७. उसके पति की मृत्यु को सुनकर स्वजन लोग शीघ्र उसके घर में आकर अपने हृदय के दुख को प्रगट करते हैं और उसे प्रचुर सांत्वना देते हैं ।

८. इस संसार में कौन व्यक्ति किसके दुख को भोग सकता है ? लेकिन वह अपनी सांत्वना देकर दूसरे के दु:ख को हल्का कर सकता है ।

९. मेरे जामाता का देहान्त हो गया है—यह सुनकर माता-पिता के हृदय पर दु:ख का तीव्र प्रहार हुआ । जिसका कोई भी कथन कर नहीं सकता ।

१०. हे मृत्यु ! तूने यह क्या किया ? क्या तुम्हें कुछ भी दया नहीं आई ? मेरी पुत्री को यौवनावस्था में विधवा कर हे निर्दय ! क्यों तू हंस रहा है ?

११. हे काल ! तुम निश्चय ही क्रूर हो अत: मनुष्य तुम्हें नहीं चाहते । क्रूरता से कोई भी व्यक्ति किसी का प्रिय नहीं हो सकता ।

आगम्म ताए य गिहम्मि भूहवो, बंधेइ धीरं दुहियं य अप्पयं ।
भासेइ किं होहिइ सोयओ सुआ, जायं य जं तं लिहियं य संपयं ॥१२ ॥

अस्सिं य लोअम्मि किमत्थि **अप्पयं, अण्णं** य मूढा भणिउं परं णिअं ।
वच्चेंति दुक्खं किर तस्स णासणे, हेऊ ममत्तं हु दुहस्स सासयं ॥१३ ॥

णो किं वि वत्थुं भुवणम्मि अप्पयं, णासे तया से दुहिया ! दुहेण किं ।
दुक्खं अओ तं चइऊण सत्तरं, धम्मम्मि लीणा य हुवेज्ज संपयं ॥१४ ॥

दाऊण इत्थं य सुअं य पेरणं, णेऊण तं दुत्ति पुरिं समागओ ।
दुक्खस्स कालम्मि कणीण विज्जए, लोए सया भो !पियराण आसयो ॥१५ ॥

लद्धूण मायापियरस्स आसयं, दुक्खस्स भारं लहुअं कुणेइ सा ।
धम्मे परं णो रमए य माणसं, धम्मो य कम्मेहि गुरूण दुक्करो ॥१६ ॥

पुप्फाइचूलो लहिउं कुसंगइं, काउं य लग्गो य इओ य चोरिअं ।
मच्चाण किं किं अहियं ण जायए, लोअम्मि णूणं य कुसंगओ सया ॥१७ ॥

वित्तस्स ऊणे य कुणेंति चोरियं, लोए मणुस्सा किर केइ संपयं ।
कुव्वेंति हा ! दुव्वसणेहि केइ भो !, मच्चाहुणा केइ कुसंगओ सया ॥१८ ॥

कम्मं परं भो ! अहमं य विज्जए, लोअम्मि चोज्जं ति जिणेहि साहिअं ।
गच्छेंति णिंदं वइरं[10] य माणवा, मच्चा चएज्जा य अओ य चोरिअं ॥१९ ॥

सा पुप्फचूला वि णिअस्स बंधुणो, कज्जम्मि हा ! देइ सहजोगमप्पयं ।
मच्चं पडंतं अहियं[11] य पाडिउं, विज्जंति लोए बहुणो य माणवा ॥२० ॥

लद्धुं सुसाए सहजोगमप्पणो- कज्जम्मि वुड्ढि य गओ मणोबलो ।
कुव्वेइ थेयं चइऊण सो भयं, इत्थं य पीलेइ पया य अप्पणा ॥२१ ॥

हा !रक्खआ होंति जया य भक्खआ, णिच्चं पयाणं कुदसा य जायए ।
अस्सिं य काले वि ण किंचि माणवा, कुव्वेंति तेसिं अहियो[12] य णिच्छिओ ॥२२ ॥

इइ बीओ सग्गो समत्तो

(१०) वेरं (वइरादौ वा-प्रा.व्या ८/१/१५२)।
(११) अधिकम् । (१२) अहितः ।

१२. राजा उसके (पुष्पचूला के) घर आकर अपनी पुत्री को धैर्य बंधाता है और कहता है-पुत्रि ! अब शोक करने से क्या होगा ? जो लिखा था वह हो गया।

१३. इस संसार में अपना क्या है ? फिर भी मूढ व्यक्ति दूसरे को अपना कहकर उसके विनाश होने पर दु:खी होते हैं। ममत्व ही सदा दु:ख का हेतु है।

१४. पुत्रि ! इस संसार में कोई भी वस्तु अपनी नहीं है। फिर उसके नष्ट होने पर दु:ख क्यों ? अत: तुम शीघ्र ही दु:ख को छोड़कर धर्म में लीन हो जाओ।

१५. इस प्रकार पुत्री को प्रेरणा देकर और उसे लेकर वह अपने नगर आ गया। क्योंकि दु:ख के समय में कन्या को माता-पिता का ही आश्रय होता है।

१६. माता-पिता के आश्रय को पाकर वह अपने दु:ख को हल्का करती है। लेकिन उसका मन धर्म में नहीं लगता। क्योंकि कर्मों से भारी व्यक्तियों के लिए धर्माचरण सरल नहीं है।

१७. इधर पुष्पचूल कुसंगति को पाकर चोरी करने लगा। कुसंगति से मनुष्यों का संसार में क्या-क्या अहित नहीं होता ?

१८. कई व्यक्ति धन के अभाव में चोरी करते हैं, कई दुर्व्यसनों में पड़कर और कई कुसंगति के कारण चोरी करते हैं।

१९. लेकिन चोरी जघन्य कार्य है ऐसा जिनेश्वर देवों ने कहा है। इससे निन्दा होती है और वैर बढ़ता है। अत: मनुष्यों को चोरी छोड़ देनी चाहिए।

२०. वह पुष्पचूला भी अपने भाई के कार्य में अपना सहयोग देने लगी। गिरे हुए व्यक्ति को और अधिक गिराने वाले संसार में बहुत मनुष्य हैं।

२१. अपने कार्यों में बहिन का सहयोग पाकर उसका मनोबल बढ गया। वह निर्भय होकर चोरी करने लगा और प्रजा को पीड़ित करने लगा।

२२. जब रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं तब प्रजा की सदा कुदशा होती है। ऐसे समय में यदि मनुष्य कुछ भी नहीं करते हैं, तो उनका निश्चित ही अहित होता है।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तइयो सग्गो

पावस्स[1] कुंभो य जया भरेइ, तया विभत्तं तुरिअं पयाइ ।
उत्ती य एसा भुवणे पसिद्धा, दंसेज्ज सा अत्थ कहं य सिद्धा ॥१॥

पुप्फाइचूलो य कुणेइ चोज्जं, सहीहि सद्धिं णयरीअ ताअ ।
सव्वत्थ मच्चाण तया मुहेसु, फुरेइ चोज्जस्स अओ य वत्ता ॥२॥

जे के वि मग्गम्मि णरा मिलेंति, कुणेंति सव्वे य इमं य वत्तं ।
अस्सिं य गेहम्मि य अज्ज चोज्जं, घरम्मि अस्सिं किर अज्ज पयायं ॥३॥

इत्थं जणेसु य भयं पयायं, सुरक्खिओ मण्णइ को ण मच्चो ।
थेणाण भेयं लहिउं तयाणिं, कुणेंति चेट्ठं पउरा[2] य झत्ति ॥४॥

पुप्फाइचूलो भइणीअ सद्धिं, करेइ चोज्जं लहिउं रहस्सं ।
मच्चा य चित्तं पगया समे भो !, घरम्मि किं होइ इणं य रण्णो ॥५॥

इत्थं जया भो ! णिवमंदिरेसुं, हुवेइ किच्चं य तया मणुस्सा ।
अण्णे कुणेज्जा इह विम्हयो को, अओ कुणेज्जा पडिगारमस्स ॥६॥

पुप्फाइचूलस्स गया समीवं, णरा अणेगे मिलिऊण सब्भा ।
साहेंति इत्थं वियणम्मि तं य, वरं भवाणं य कये ण चोज्जं ॥७॥

थेयं करिस्सेइ भवं य इत्थं, जणस्स अण्णस्स य का य वत्ता ।
चोज्जं चएज्जा अहमं य किच्चं, भवं अओ भो ! भणणं ति अम्हं ॥८॥

पुप्फाइचूलेण परं ण दिण्णं, णिवेयणे तेसि य किंचि झाणं ।
काउं य णेसिं णिगडिं दुअं ता, कुणेंति बाहिं सयणा सयस्स ॥९॥

दट्ठूण कूरं किर से सहावं, करेंति णामे परिवट्टणं ते ।
बंकाइचूलं य धरेंति तस्स, सुसाअ ताए इर बंकचूला ॥१०॥

उवद्दवो तस्स पुणो वि वुड्ढिं, जया गया हन्द बहुं वि तत्थ ।
भद्दा अणेगे पउरा तयाणिं, णिवस्स पासम्मि समागया य ॥११॥

---

(१) छंद– उपजाति (लक्षण-यत्रेन्द्रवज्राद्यतृतीययोः स्यादुपेन्द्रवज्रायुगतुर्ययोश्च) ।
(२) पौराः (अउः पौरादौ च–प्राः व्या. ८/१/१६२) ।

तृतीय सर्ग

१. संसार में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि जब पाप का घड़ा भर जाता है तब वह फूट जाता है। वह यहां किस प्रकार सिद्ध होती है, देखें।

२. पुष्पचूल अपने मित्रों के साथ नगर में चोरी करने लगा। अत: सर्वत्र मनुष्यों के मुख पर चोरी की बात होने लगी।

३. मार्ग में जो कोई भी व्यक्ति मिलते वे सब यही बात करते कि आज इस घर में चोरी हुई है और आज इस घर में।

४. इस प्रकार मनुष्यों में भय छा गया। कोई भी व्यक्ति अपने को सुरक्षित नहीं मानने लगा। तब नगर के लोग मिलकर चोरों का भेद लेने की चेष्टा करने लगे।

५. पुष्पचूल अपनी बहिन के साथ चोरी करता है इस रहस्य को पाकर सभी व्यक्ति विस्मित हुए। राजा के घर में यह क्या हो रहा है?

६. जब राजमहल में इस प्रकार का कार्य होता है तब अन्य मनुष्य करें- इसमें आश्चर्य ही क्या है? अत: इसका प्रतिकार करना चाहिए।

७. अनेक सभ्य व्यक्ति मिलकर पुष्पचूल के पास आए और एकान्त में उसको कहा—चोरी आपके लिए अच्छी बात नहीं है।

८. यदि आप इस प्रकार चोरी करेंगे तो अन्य मनुष्यों की क्या बात? चोरी जघन्य कार्य है अत: आप उसे छोड़ दें, यही हमारा निवेदन है।

९. लेकिन पुष्पचूल ने उनके निवेदन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उसने उनको तिरस्कृत कर शीघ्र ही अपने महल से बाहर निकाल दिया।

१०. उसके क्रूर स्वभाव को देखकर उन्होंने उसका नाम बदल दिया। उसका नाम बंकचूल और उसकी बहिन का नाम बंकचूला रखा।

११ फिर भी जब उसका उपद्रव वहां बहुत बढ़ने लगा तब अनेक सभ्य नागरिक राजा के पास आए।

पुच्छेइ भूवो अहुणा य तुब्भे, समागया अत्थ कहं लवेज्जा ।
हेउं विणा आगमणं ण होइ, अओ चवेज्जा य भयं चइत्ता ॥१२॥

सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, भणेइ तेसुं मणुओ य एगो ।
हेउं णिवो ! आगमणस्स अम्हं, भवं सुणेज्जा अवहाणचित्तो ॥१३॥

दंगे भवाणं य गओ पवुड्ढिं, उवद्दवो संपइ तक्कराणं ।
मच्चा समत्था दुहिया य तेण, सुरक्खिओ मण्णइ को णिअं णो ॥१४॥

पुत्तो य पुत्ती य भवाण दाणिं, इमम्मि कज्जे सुरयत्ति दुक्खं ।
एयारिसा जत्थ हुवेंति णेया, दसा य का तत्थ पयाण होइ ॥१५॥

इत्थं य वुड्ढिं जइ अत्थ भूव !, इमो गमिस्सेइ उवद्दवो य ।
दंगं चइत्ता पउरा तयाणिं, दुअं य अण्णत्थ हु वच्चिहिंति ॥१६॥

सोऊण तेसिं य मुहेण वत्तं, णिवस्स चित्तं य गओ विसायं ।
किं तेण रण्णा भुवणम्मि अत्थि, पया य रज्जे दुहिया य जस्स ॥१७॥

भासेइ भूवो ससुहं वसेज्जा, करेमि दूरं तुरिअं दुहं भे ।
कायव्वमज्जं य णिवस्स होइ, दुहं पयाणं करणं दविट्ठं ॥१८॥

आसासणं ते लहिऊण मच्चा, णिवेण तुट्ठा स-घरं गया ते ।
चिंतेइ पच्छा हिअयम्मि भूवो, इणं तयाणिं सयराहमेव ॥१९॥

पुप्फाइचूलो य करेइ चोज्जं, कहं इयाणिं निगमम्मि मज्झं ।
सो रायपुत्तो हुविऊण इत्थं, करेइ कज्जं अहमं दुहं मे ॥२०॥

जाई णिआ वीसरिया य णेणं, कुलो णिओ विम्हरियो य तेणं ।
भीइं य मज्झं चइऊण हन्दि, दुयं पउत्तो कुपहम्मि अस्सि ॥२१॥

णेया कुकज्जं य जया कुणेंति, तया करिस्सेंति कहं पयाण ।
सिग्घं कुणेज्जा पडिगारमस्स, पयाण्णहा[3] काहिइ मज्झ णिंदं ॥२२॥

बंकाइचूलो सहसत्ति तेण, णिमंतिओ झत्ति गयेण कोवं ।
आगम्म भूवं पणमेइ सो य, परं ण भूवो किर देइ झाणं ॥२३॥

---

(३) पया + अण्णहा = पयाण्णहा ।

१२. राजा ने पूछा- तुम लोग यहां कैसे आए हो ? क्योंकि बिना कारण के यहां आना होता नहीं । अत: निर्भय होकर बोलो ।

१३. राजा की वाणी सुनकर उनमें से एक ने कहा- राजन् !आप सावधानी पूर्वक हमारे आगमन का हेतु सुनें ।

१४. आपके नगर में चोरों का उपद्रव बढ गया है । सभी व्यक्ति उससे दुखी है । कोई भी अपने को सुरक्षित नहीं मानता है ।

१५. दु:ख है कि आपके पुत्र व पुत्री इस कार्य में रत हैं । जिस राज्य में ऐसे नेता हैं वहां प्रजा की क्या दशा होती है ?

१६. राजन् ! यदि यह उपद्रव यहां इसी प्रकार बढता रहा तो पुरवासी शीघ्र ही इस नगर को छोड़कर अन्यत्र चले जायेंगे ।

१७. उनके मुख से यह बात सुनकर राजा का मन खिन्न हुआ । उस राजा से क्या ? जिसके राज्य में प्रजा दु:खी हो ।

१८. राजा ने कहा—तुम लोग सुखपूर्वक रहो । मैं शीघ्र ही तुम्हारे दु:ख को दूर करता हूं । क्योंकि प्रजा के दु:ख को दूर करना राजा का प्रथम कर्तव्य है ।

१९. राजा से आश्वासन पाकर वे सभी प्रसन्न होकर अपने घर चले गए । तत्पश्चात् राजा अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा—

२०. बंकचूल मेरे नगर में क्यों चोरी कर रहा है ? वह राजपुत्र होकर भी यह जघन्य कार्य कर रहा है । इसका मुझे बहुत दु:ख है ।

२१. उसने अपनी जाति, कुल का विस्मरण कर दिया है और मेरे भय को छोड़कर इस कुमार्ग में प्रवृत्त हुआ है ।

२२. जब नेता बुरा कार्य करते हैं तो जनता क्यों नहीं करेगी ? अत: मुझे इसका शीघ्र प्रतिकार करना चाहिए, अन्यथा प्रजा मेरी निंदा करेगी ।

२३. उसने क्रुद्ध होकर शीघ्र ही बंकचूल को बुलाया । बंकचूल ने आकर राजा को नमस्कार किया किन्तु राजा ने ध्यान नहीं दिया ।

पुच्छेइ इत्थं णिवई तयाणिं, करेसि किं तं अहुणा य थेयं ।
सोऊण तायस्स इमं य वत्तं, भयं गओ सो किर बंकचूलो ॥२४॥

तायेण णायं य कहं य कज्जं, इणं य चोज्जस्स महं य गुत्तं ।
लोअम्मि पावाणि लहेंति णाइं, कयाइ भो! गुत्ततणं ति सच्चं ॥२५॥

मोसं लवेंतो य चवेइ सो य, कुणेमि चोज्जं अहुणा ण ताय! ।
पावं कुणेऊण वि तं य अम्मो[४], णरा य णाइं उररीकुणेंति ॥२६॥

बंकाइचूलस्स वयं सुणेउं, णिवो य चिंतेइ हिये[५] तयाणिं ।
किं को वि मच्चो करिऊण पावं, कहेइ पावं ममए कडं य ॥२७॥

देज्जा सुडण्डं य अओ इमं हं, कुकज्जकारिं तुरिअं इयाणिं ।
जो देइ दंडं ण कुकम्मकारिं, अहम्मि[६] सो तस्स करेइ वुड्ढिं ॥२८॥

पुत्तं वा अण्णं य हुवेज्ज को वि, णिवो य पावीण य देज्ज डंडं ।
अण्णं य डंडं तणुयं ण देइ, लहेइ णिंदं भुवणे सया सो ॥२९॥

इत्थं तयाणिं य वियारिऊण, चवेइ भूवो किर बंकचूलं ।
कुव्वेसि चोज्जं य तुमं इयाणिं, पुरीअ सब्भेहि णिवेइयो हं ॥३०॥

तुं रायपुत्तो हुविऊण चोज्जं, करेसि मच्चा इयरा कहं ण ।
णिच्चं पयाणं उवरिं पहावो, पडेइ लोगे किर सासगाण ॥३१॥

डंडं अओ तुज्झ इणं य देमि, महं य देसं चइऊण अज्ज ।
गच्छेज्ज अण्णत्थ तुमं जहेच्छं, ण रोयए मे अहुणा य किंचि ॥३२॥

सोऊण भूवस्स मुहारविंदा, इणं य डंडं तुरिअं पयंगो ।
णायस्स अग्गे णमिऊण तस्स, गयो गहत्थीहि समं तयाणिं ॥३३॥

सोऊण डंडस्स इमं य वत्तं, परोप्परेणं मणुया समत्था ।
चित्तम्मि चित्तं पगया णिवस्स, कुणेंति णायस्स तया पसंसं ॥३४॥

इइ तइयो सग्गो समत्तो

---

(४) आश्चर्यम् (अम्मो आश्चर्ये-प्रा.व्या. ८/२/२०८)।
(५) हृदये (किसलय-कालायस-हृदये यः-प्रा.व्या. ८/१/२६९)।
(६) अघे ।

२४. राजा ने उससे पूछा-क्या तुम चोरी करते हो ? पिता की यह बात सुनकर बंकचूल भयभीत हो गया ।

२५. पिताजी ने मेरी चोरी की गुप्त बात को कैसे जान लिया ? यह सत्य है कि पाप कभी छिपते नहीं ।

२६. उसने झूठ बोलते हुए कहा- पिताजी ! मैं चोरी नहीं करता हूं । यह आश्चर्य है कि मनुष्य पाप करके भी उसे स्वीकार नहीं करते ।

२७. बंकचूल की बात सुनकर राजा मन में सोचने लगा- क्या कोई मनुष्य पाप करके कहता है कि मैने पाप किया है ।

२८. अत: इस कुकर्मी को मुझे शीघ्र ही दंड देना चाहिए । जो व्यक्ति बुरा कार्य करने वाले को दंड नहीं देता है वह उसके पाप कार्य को बढाता है ।

२९. चाहे पुत्र हो या और कोई, बुरा कार्य करने वाले को राजा दंड दें । जो राजा दूसरों को दंड देता है और पुत्र को नहीं वह सदा निंदा को प्राप्त करता है ।

३०. इस प्रकार विचार कर राजा ने बंकचूल से कहा- नगर के सभ्य व्यक्तियों ने मुझसे निवेदन किया हैं कि तुम चोरी करते हो ।

३१. तुम राजपुत्र होकर भी चोरी करते हो तब दूसरे मनुष्य क्यों नहीं करेंगे ? क्योंकि प्रजा के ऊपर सदा शासकों का प्रभाव पड़ता है ।

३२. अत: मैं तुम्हें यह दंड देता हूं कि तुम आज ही मेरे देश को छोड़कर अन्यत्र जहां इच्छा हो वहां चले जाओ । तुम मुझे अब बिल्कुल अच्छे नहीं लगते ।

३३. राजा के मुख से यह दंड सुनकर सूर्य उसके न्याय के आगे झुक कर किरणों के साथ चला गया (अस्त हो गया) ।

३४. एक दूसरे से दंड की यह बात सुनकर सभी मनुष्य मन में विस्मित हुए । वे राजा के न्याय की प्रशंसा करने लगे ।

तृतीय सर्ग समाप्त

चउत्थो सग्गो

काऊणं[१] जो पावकम्मं मणुस्सो, पच्छातावं माणसे णो कुणेइ ।
लोगे सक्को तं चइत्तुं ण मच्चो, पच्छातावा जायए पावरोहो ॥१॥
काऊणाहं[२] बंकचूलो तयाणिं, पच्छातावं माणसे णो करेइ ।
पावे वुड्ढी जायए से अनप्पा, आदिट्ठो सो छड्डिउं झत्ति देसं ॥२॥
णं लद्धूणं अप्पतायेण आणं, चित्ते सोओ तस्स हूओ ण किंचि ।
रत्तीए तं दुत्ति दंगं विहाय, उक्को गंतुं सो तयाणिं य जाओ ॥३॥
तेणं सद्धिं तस्स वच्चेइ भज्जा, भत्तारं जा जीअ-संगं मुणेइ ।
दुक्खे कंतं जा य णाइं चएइ, णारी सेट्ठा सा सुहीहिं पवुत्ता ॥४॥
णेहेणं से बंकचूला सुसा वि, तेणं सद्धिं सत्तरं सा गमेइ ।
ताहिं सद्धिं बंकचूलो पयाइ, कम्मेहिं सो पेरिओ कुच्छिएहिं ॥५॥
वच्चंतो सो आगओ भिल्लपल्लिं, तत्थट्ठा रे चोरियं भो ! कुणेंति ।
अप्पं कालं विस्समं तत्थ णेउं, संता[३] सव्वे ताअ बाहिं ठिया ते ॥६॥
तत्थट्ठाणं माणवाणं तयाणिं, आआ[४] सव्वे दंसणे तक्खणं ते ।
तेसुं सेट्ठो ताण दट्ठूण रूवं, चित्तं पत्तो तं य पुच्छेइ इत्थं ॥७॥
को तुं कम्हा आगओ अत्थ कुत्थ, भज्जाओ दो ते[५] य सद्धिं य काओ ।
पण्हं सोच्चा बंकचूलो य तस्स, ओणेंतो[६] से संसयं वज्जरेइ ॥८॥
रण्णो पुत्तो संपयं हं हुवेमि, मज्झं णामो बंकचूलो य अत्थि ।
कंताओ वे[७] णो य अण्णा य काओ, एगा पत्ती मज्झ बीया सुसा य ॥९॥
चोज्जे जाओ हं पउत्तो इयाणिं, तायेणं हं झत्ति णिस्सारिओ य ।
कम्माइं जो जारिसाइं करेइ, णूणं तेसिं सो फलाइं लहेइ ॥१०॥

---

(१) छंद-शालिनी (लक्षण—शालिन्युक्तां तौ तगौ गोऽब्धि लोकैः) ।
(२) काऊण + अहं । अहं इति अघम् ।
(३) श्रान्ता ।
(४) आगताः ।
(५) त्वया ।
(६) अपनयन् ।
(७) द्वे ।

चतुर्थ सर्ग

१. जो व्यक्ति पाप करके भी उसका पश्चात्ताप नहीं करता वह उसको कभी नहीं छोड़ सकता। क्योंकि पश्चात्ताप से ही पाप का निरोध होता है।

२. पाप करके भी बंकचूल मन में पश्चात्ताप नहीं करता है अत: उसके पाप में बहुत वृद्धि हुई। राजा ने उसको शीघ्र ही नगर छोडने का आदेश दे दिया।

३. अपने पिता से यह आदेश पाकर भी उसके मन में दु:ख नहीं हुआ। वह रात्रि में नगर छोड़कर जाने को उत्सुक हुआ।

४. पति को ही जीवन-साथी मानने वाली उसकी पत्नी भी उसके साथ जाती है। सुधीजनों ने उसी नारी को श्रेष्ठ कहा है जो दु:ख में भी पति को नहीं छोड़ती।

५. उससे (बंकचूल से) स्नेह होने के कारण बहिन बंकचूला भी उसके साथ जाती है। उन दोनों (पत्नी और बहिन) के साथ बंकचूल बुरे कर्मों से प्रेरित होता हुआ चला जाता है।

६. चलता हुआ वह भीलों (आदिवासी) की बस्ती में आ गया। वहां के मनुष्य चोरी करते थे। वे सभी थके हुए थे अत: थोड़ी देर विश्राम करने के लिए उस बस्ती के बाहर ठहर गए।

७. वहां के मनुष्यों ने उनको देखा। उनके रूप को देखकर विस्मित होकर मुखिया ने बंकचूल को पूछा —

८. तुम कौन हो ? यहां क्यों आए हो ? तुम्हारे साथ ये दो स्त्रियां कौन है ? उसके प्रश्न को सुनकर बंकचूल ने संशय दूर करते हुए कहा—

९. मैं राजा का लड़का हूं। मेरा नाम बंकचूल है। ये दो औरतें और कोई नहीं हैं- एक मेरी पत्नी है और एक मेरी बहिन।

१०. मैं चोरी करने लगा अत: पिताजी ने मुझे देश से निकाल दिया। मनुष्य जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है।

तम्हा रज्जा पट्ठिऊणं इयाणिं, ठाणे अस्सिं विस्समं किंचि णेउं ।
अम्हे सव्वे संपयं अत्थ ठिया य, अण्णो हेऊ णो य ठाणस्स अत्थि ॥११॥

सोऊणं णं बंकचूलस्स वाणिं, अप्पे चित्ते चिंतणं सो कुणेइ ।
एअं दक्खं आसयं जो य देज्जा, वड्ढेज्जा से णिच्छियं अत्थ कज्जं ॥१२॥

णेहेणं सो बंकचूलं चवेइ, मा गच्छेज्जा तुं य अण्णत्थ कुत्थ ।
वासं कुज्जा णिब्भयं तं य अत्थ, अम्हं णाइं विज्जए काइ बाहा ॥१३॥

अम्हं कज्जं चोरियाइं य अत्थि, तुम्हं कज्जं चोरियाइं इयाणिं ।
अम्हं कज्जे विज्जए भो ! समत्तं, कत्ताराणं सारिसाणं ण दंदो ॥१४॥

वायं इत्थं तक्करेसस्स सोच्चा, चित्ते मोओ बंकचूलस्स जाओ ।
चिंतेइत्थं[८] कुत्थ गच्छामि अत्थ, वासो सेयो मे णिरालंबणस्स ॥१५॥

आभारं से बंकचूलो य मत्ता, वासं सायं सो य कुव्वेइ तत्थ ।
इत्थं तेसिं सत्तरं माणसम्मि, जायाण्णोण्णं मोयरेहा तयाणिं ॥१६॥

भूवेणं सो जेण बीयेण झत्ति, देसा बाहिं हंदि णिस्सारिओ य ।
तेसिं संगं सो पुणो लद्धुआणं, दक्खत्तेणं चोरियाइं कुणेइ ॥१७॥

दुक्कम्माणं जाव अंतो ण होइ, सक्का संगं सज्जणाणं ण लद्धुं ।
वुत्तं सच्चं सज्जणाणं य संगं, सब्भग्गेणं माणवेहं लहेंति ॥१८॥

थेणाणं सो णेसि लद्धूण संगं, तेसिं कज्जे हंदि वुड्ढिं कुणेइ ।
दट्ठूणं से तक्करेसो य दक्खं[९], चित्ते मोयं सो तयाणिं लहेइ ॥१९॥

मच्चुं पत्तो तक्करेसो जया सो, सव्वे थेणा सोअतत्ता सुदक्खा ।
जुग्गं बुज्झा सव्वहा बंकचूलं, णेयारं तं अप्पयं ते कुणेंति ॥२०॥

इइ चउत्थो सग्गो समत्तो

(८) चिंतेइ + इत्थं ।
(९) दाक्ष्यम् ।

११. उस राज्य से प्रस्थान कर, कुछ देर विश्राम करने के लिए हम सब अभी यहां ठहर गए। ठहरने का अन्य कोई हेतु नहीं है।

१२. बंकचूल की वाणी सुनकर उसने (चोरों के स्वामी ने) मन में सोचा— इस चतुर व्यक्ति को जो भी आश्रय देगा उसका कार्य निश्चित ही बढ़ेगा।

१३. उसने स्नेहपूर्वक बंकचूल से कहा- तुम अन्यत्र कहीं मत जाओ। तुम यहां निर्भय होकर रहो। हमें कुछ भी बाधा नहीं है।

१४. हमारा कार्य भी चोरी करना है और तुम्हारा कार्य भी चोरी। हमारे कार्य में समानता है। समान कार्य करने वालों में द्वन्द नहीं होता।

१५. चौराधिपति की यह बात सुनकर बंकचूल का मन प्रसन्न हुआ। उसने सोचा— मैं अन्यत्र अभी कहां जावूंगा? मेरा कोई आलंबन नहीं है। अत: मेरे लिए यहीं रहना श्रेयस्कर है।

१६. उसका आभार मानकर बंकचूल वहीं रहने लगा। इस प्रकार उन दोनों के मन में प्रसन्नता हुई।

१७. राजा ने जिस कारण से उसे देश से बाहर निकाला था वह पुन: उनकी संगति पाकर दक्षता से चोरी आदि करने लगा।

१८. जब तक दुष्कर्मों का अंत नहीं होता तब तक मनुष्य सज्जनों की संगति प्राप्त नहीं कर सकता। अत: सत्य कहा गया है कि सज्जनों की संगति सद्‌भाग्य से ही मनुष्य को प्राप्त होती है।

१९. उन चोरों की संगति पाकर वह उनके कार्य को बढ़ाने लगा। उसकी दक्षता देखकर चोरों का स्वामी मन में प्रसन्न हुआ।

२० जब चौराधिपति की मृत्यु हो गई तब शोकतप्त सभी चौरों ने मिल कर बंकचूल को सब प्रकार से योग्य जानकर अपना नेता बना लिया।

चतुर्थ सर्ग समाप्त

पंचमो सग्गो

अंसुकरेहि[१] तत्तं य, संतं काउं वसुंधरं ।
आगओ वरिसा- कालो, माणवाणं मुयप्पयो ॥१ ॥

सुक्का णई तडागा य, काउं जलमया दुअं ।
आगओ वरिसा-कालो, मोराणां य मुयप्पयो ॥२ ॥

सुक्का भूमीउ धारेउं, हरियवसणं बहुं ।
आगओ वरिसा- कालो, किसगाणं मुयप्पयो ॥३ ॥

अहेसि[२] वरिसा-काले, णिच्छियं णराण कये ।
बाहा रायपहाभावे, गमणागमणे पुरा ॥४ ॥

समागच्छन्ति मग्गम्मि, तडागा सरिया य जा ।
णीरेण होंति पुण्णा ता, जओ हवंति दुत्तरा ॥५ ॥

अओ तस्सि य कालम्मि, वरिसा-पुरिमं णरा ।
काहीअ[३] णिअगं जत्तं, पच्छा णाइं दुहावहा ॥६ ॥

साहुणो पावसं काउं, वरिसा-पुरिमं तया ।
गच्छेंति णिच्छियं ठाणं, बाहा काइ हुवेज्ज ण ॥७ ॥

तम्मि कालम्मि गच्छेइ, चंदजसो मुणीवई ।
ससीसो पावसं काउं, कम्मि ठाणम्मि णिच्छिये ॥८ ॥

गंतुं य णिच्छिये ठाणे, वरिसा-पुरिमं किर ।
तेसिं माणसिया कंखा, कंखेइ अवरं विही ॥९ ॥

वरिसा पउरा जाया, पहम्मि सिं[४] अचिंतिया ।
पोम्मायरा णई सव्वा, जाया जलमया तया ॥१० ॥

सुक्कभूमीअ सिग्घं य, पयाया हरियंकुरा ।
आगया सम्मुहे णेसि- मकप्पिया ठिई तया ॥११ ॥

---

(१) छन्द-अनुष्टुप् । (२) आसीत् ।
(३) अकार्षुः । (४) तेषां ।

पंचम सर्ग

१. सूर्य की किरणों से तप्त भूमि को शान्त करने के लिए वर्षा काल आ गया, जो मनुष्यों को आनन्द देने वाला है ।

२. शुष्क नदी और तालाबों को शीघ्र ही जलमय बनाने के लिए वर्षाकाल आ गया, जो मयूरों को आनन्द देने वाला है ।

३. शुष्क भूमि को हरित वस्त्र धारण कराने के लिए वर्षाकाल आ गया, जो किसानों को आनन्द देने वाला है ।

४. प्राचीन काल में सड़के नहीं थीं । अत: मनुष्यों को वर्षाकाल में आने-जाने में बहुत कठिनाई होती थी ।

५. मार्गवर्ती तालाब और नदियां जल से भर जाती थीं जिससे उनको पार करना मुश्किल होता था ।

६. अत: उस समय में मनुष्य वर्षा के पूर्व ही अपनी यात्रा कर लेते थे जिससे बाद में वह दु:खप्रद न हो ।

७. मुनिगण भी वर्षा के पूर्व ही निश्चित स्थान में पावस करने चले जाते थे जिससे कोई बाधा न हो ।

८. उस समय में आचार्य चंद्रयश अपने शिष्यों के साथ किसी निश्चित स्थान में पावस करने जा रहे थे ।

९. उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वर्षा के पूर्व ही निश्चित स्थान पर पहुंचना है । किन्तु विधि अन्य ही चाहती है ।

१०. उनके मार्ग में अकल्पित प्रचुर वर्षा हुई । सभी तालाब और नदियां जलमग्न हो गई ।

११. शुष्क भूमि पर हरे अंकुर उत्पन्न हो गए । तब उनके सामने अकल्पित स्थिति आ गई ।

पाणिये हरिये जाणे, होइ जीववहो अओ ।
गच्छेंति मुणिणो णाइं, तेसिं य उवरिं कया ॥१२॥

जेण सत्थेण सद्धिं ते, वच्चेंति संपयं पहे ।
संजोगा तस्स संगो वि, विच्छूडो सहसा तया ॥१३॥

अपुव्वो सहजोगो य, आसि से पंथ-दंसणे ।
अहावे मग्गदट्ठूणं[५], जत्ता होइ दुहावहा ॥१४॥

विलोऊण समं ठिइं, गणिणा समयण्णुणा ।
णिण्णियं तक्खणं इत्थं, अग्गं ण गमणं वरं ॥१५॥

दट्ठव्वं पावसं जुग्गं, ठाणं गामम्मि अंतिये ।
लद्धे ठाणम्मि तत्थेव, कायव्वा पावसट्ठिई ॥१६॥

ढुण्ढुल्लिउं[६] य ठाणं य, पावसस्स कये गणी ।
तम्मि ठाणे गओ जत्थ, बंकचूलो वसेइ य ॥१७॥

जाएंति पल्लीवासीहिं, पावसट्ठं पयं तया ।
सोउं णेसिं वयं एगो, कहेइ मणुयो तया ॥१८॥

णीलुक्केज्ज[७] य अम्हाण, सामिणो सविहे भवं ।
सो च्चेअ पच्चलो दाउं, ठाणं भवाण अत्थ य ॥१९॥

णिसम्म वयणं तस्स, चंदजसो गणीवरो ।
अब्भासं बंकचूलस्स, जाएउं ठाणमागओ ॥२०॥

दट्ठूण कं वि साहुं य, बंकचूलो णिये घरे ।
अहिवंदिय पुच्छेइ, कहमत्थ समागओ ॥२१॥

सुणाविअ समं वट्टं, वियक्खणो गणीवरो ।
पत्थेइ पावसट्ठं तं, जुग्गं ठाणं तयाणि य ॥२२॥

सोऊण भारइं तेसिं, बंकचूलो चवेइ तं ।
इणं ठाणं समं तुब्भं, कुणेज्जा पावसं सुहं ॥२३॥

---

(५) मार्गद्रष्टृणाम् ।
(६) गवेषयितुं ।
(७) गच्छेत् (गमे—प्रा.व्या. ४/४/१६२) ।

१२. जल और हरियाली पर जाने से जीवों की हिंसा होती है अत: मुनिगण उनके ऊपर से कभी नहीं जाते।

१३. जिस सार्थ के साथ वे मार्ग में जा रहे थे, संयोग से अचानक उसका भी संग छूट गया।

१४. मार्ग दर्शन (रास्ता दिखाने) में उसका अपूर्व सहयोग था। क्योंकि मार्गद्रष्टा के अभाव में यात्रा दु:खप्रद हो जाती है।

१५. सब स्थिति को देखकर समयज्ञ आचार्य ने तत्काल यह निर्णय किया कि आगे जाना ठीक नहीं है।

१६. समीपवर्ती गांव में पावस योग्य स्थान देखना चाहिए। स्थान प्राप्त होने पर वहीं पावस करना चाहिए।

१७. पावसार्थ स्थान ढूंढने के लिए आचार्य उस पल्ली में गए जहां बंकचूल रहता था।

१८. उन्होंने पल्लीवासियों से पावस के लिए स्थान की याचना की। उनके वचन सुनकर एक व्यक्ति ने कहा—

१९. आप हमारे स्वामी के पास जाए वह ही आपको यहां स्थान दे सकता है।

२०. उसके वचन सुनकर आचार्य चन्द्रयश स्थान की याचना करने के लिए बंकचूल के पास आए।

२१. किसी साधु को अपने घर में देखकर बंकचूल ने नमस्कार कर पूछा- आप यहां कैसे आए हैं?

२२. समस्त बात सुनाकर विचक्षण आचार्य ने उससे पावस—योग्य स्थान की याचना की।

२३. उनकी बात सुनकर बंकचूल ने कहा—यह समस्त स्थान आपका ही है। आप सुखपूर्वक पावस करें।

परं णिवेयणं एगं, झाएज्जा संपयं भवं ।
विज्जए इमिआ वत्थी, पाटच्चराण संपयं ॥२४ ॥

अहयं अत्थि से सामी, वज्जरेमि अओ भवं ।
वसेज्ज ससुहं अत्थ, ण बाहा मह विज्जए ॥२५ ॥

पारेइ[८] पावसे दाउं, उवएसं परं णहि ।
अत्थट्ठं पुरिसं कं वि, इणं णिवेयणं महं ॥२६ ॥

चइउं जं य कज्जं य, उवइसइ माणवं ।
अम्हे समायरामो तं, संपइ हे मुणीवरो ! ॥२७ ॥

संपयं चोरिअ च्चेअ, जीविया - साहणं हु णे ।
अण्णं ण विज्जए किं वि, साहणं संपयं किर ॥२८ ॥

ठाणं दाउं अओ तुम्हं, ण वम्फेमो[९] वयं समे ।
मूले हाणिं कुओ वत्ता, लाहस्स उ य विज्जए ॥२९ ॥

इणं णिवेयणं मज्झं, जइ मण्णं हुवेज्ज भे ।
कुणेज्जा ससुहं अत्थ, चउमासं णिअं खलु ॥३० ॥

सोच्चाण बंकचूलस्स, णिवेयणं इणं तया ।
पडिसुणेइ सिग्घं तं, समयण्णू गणेसरो ॥३१ ॥

देइ णिवसिउं ठाणं, बंकचूलो गणीवरं ।
लद्धूण रुइरं ठाणं, चिट्ठेंति ते तया तहिं ॥३२ ॥

आयरिया समे साहू, आहूय सयलं ठिइं ।
साहिऊण य हक्केंति,[१०] उवएस-कये तया ॥३३ ॥

कुणेइ पावसं तत्थ, सविणेयो रिसीवई ।
ण देइ उवएसं कं, पालेइ णिअगं वयं ॥३४ ॥

सज्झाय-झाणलीणा ते, णियत्त-साहणापरा ।
जवेंति[११] णिअगं कालं, पसण्णचेयसा सया ॥३५ ॥

---

(८) शक्नोति (शकेश्चय-तर-तीर-पाराः— प्रा.व्या. ८/४/८६) ।

(९) कांक्षामः ।

(१०) निषिध्यन्ति (निषेधेर्हक्कः—प्रा.व्या. ८/४/१३४) ।

(११) यापयन्ति (यापेर्जवः—प्रा.व्या. ८/४/४०) ।

२४. किन्तु एक निवेदन है उस पर आप अभी ध्यान दें । यह चौरों की बस्ती है । मैं उसका स्वामी हूं ।

२५. मैं आपसे कहता हूं कि आप यहां सुखपूर्वक रहें । मुझे कोई भी बाधा नहीं है ।

२६. लेकिन आप चातुर्मास में यहां के किसी भी व्यक्ति को उपदेश नहीं दे सकते । यह मेरा निवेदन है ।

२७. आप जिस कार्य को छोड़ने के लिए कहते हैं उसका हम सब आचरण करते हैं ।

२८. अभी चोरी ही हमारी जीविका का साधन है । अन्य कोई साधन नहीं है ।

२९. हम आपको स्थान देकर मूल में हानि नहीं चाहते । लाभ की तो बात ही कहां है ?

३०. यदि आपको मेरा निवेदन मान्य हो तो आप सुखपूर्वक यहां अपना चातुर्मास करें ।

३१. बंकचूल का यह निवेदन सुनकर समयज्ञ आचार्य ने उसे तत्काल स्वीकार कर लिया ।

३२. बंकचूल ने रहने के लिए स्थान दे दिया । सुन्दर स्थान को पाकर वे वहीं ठहर गए ।

३३. आचार्य ने समस्त साधुओं को बुलाकर सब स्थिति बताई और उपदेश देने के लिए मना की ।

३४. आचार्य अपने शिष्यों के साथ वहां पावस बिताने लगे । वे किसी को उपदेश नहीं देते । अपने वचन का पालन करते हैं ।

३५. वे स्वाध्याय, ध्यान में लीन रहकर आत्म-साधना में तत्पर रहने लगे और प्रसन्न मन से अपना समय बिताने लगे ।

साहूणं पुढमं कज्जं, सयन्त- साहणा चिअ ।
उवएसं उ गोणं य, कज्जं तेसिं विज्जए ॥३६ ॥

खित्तं ऊसरभूमीए, बीयं होइ मुहा जहा ।
विणा पत्तं तहा दिण्णो, उवएसो वि णिप्फलो ॥३७ ॥

जया जणा ण वांछेंति, उवएसं य धम्मियं ।
उवएसो तया दिण्णो, होइ णिरत्थयो सना ॥३८ ॥

अओ दट्ठूण दव्वं य, खेत्तं कालं य माणवं ।
उवएसो य दायव्वो, तित्थयरेहि साहियं ॥३९ ॥

आपावसं णरो को वि, तेसिं संगं करेइ णो ।
भग्गहीणा ण लाहं य, लहेंति लहिउं वसुं ॥४० ॥

दुक्करा संगई लोए, साहूणं भणिया सया ।
दुक्करं य परं तेण, लाहं लहेज्ज संगओ ॥४१ ॥

बोल्लीणो पावसो कालो, सणिअं सणिअं समं ।
आओ विहारकालो य, समणाणं कडे तया ॥४२ ॥

णेऊण णिअगं भारं, तत्थट्ठा मुणिणो समे ।
गणीसेण समं काउं, विहारं सज्जिया दुअं ॥४३ ॥

विहारस्स य पुव्वं य, चंदजसो गणीवई ।
आगओ बंकचूलस्स, पासं इत्थं लवेइ य ॥४४ ॥

कुणेमो अहुणा अम्हे, पट्ठाणं सत्तरं इओ ।
ठाणं पुणो य गेण्हेज्जा, दिण्णं जं पुरिमं तए ॥४५ ॥

सोऊण वयणं इत्थं, बंकचूलो भणेइ य ।
तेसिं दिढपइण्णाअ, पहाविओ य तक्खणं ॥४६ ॥

इणं ठाणं तुहं सव्वं, वसेज्जा ससुहं इह ।
मा अण्णहि य वच्चेज्जा, इणं णिवेयणं महं ॥४७ ॥

णिसम्म तस्स वत्तं य, वज्जरेइ गणाहिवो ।
ण कप्पइ मुणीणं य, वासो एगे पये सया ॥४८ ॥

३६. आत्मसाधना ही साधुओं का प्रथम कार्य है । उपदेश तो उनका गौण कार्य है ।

३७. जिस प्रकार ऊषर भूमि में प्रक्षिप्त बीज व्यर्थ जाता है उसी प्रकार बिना पात्र के दिया हुआ उपदेश भी निष्फल जाता है ।

३८. जब मनुष्य धार्मिक उंपदेश नहीं चाहते तब उनको दिया हुआ उपदेश सदा निरर्थक जाता है ।

३९. इसीलिए तीर्थंकरों ने कहा है- द्रव्य, क्षेत्र, काल और मनुष्य को देखकर उपदेश देना चाहिए ।

४०. चतुर्मास पर्यन्त किसी भी व्यक्ति ने उनकी संगति नहीं की । भाग्यहीन व्यक्ति रत्न पाकर भी उसका लाभ नहीं उठा पाते ।

४१. संसार में साधुओं की संगति दुष्कर मानी गई है लेकिन उससे भी दुष्कर है संगति से लाभ उठाना ।

४२. धीरे धीरे सम्पूर्ण पावस बीत गया । साधुओं के विहार का समय आ गया ।

४३. तत्रस्थ सभी मुनि अपना भार लेकर आचार्य के साथ विहार करने के लिए शीघ्र तैयार हो गए ।

४४. विहार के पूर्व आचार्य चन्द्रयश बंकचूल के पास आए और इस प्रकार बोले—

४५. अब हम यहां से शीघ्र ही प्रस्थान कर रहे हैं । तुमने जो स्थान दिया था वह वापिस सम्भालो ।

४६. उनके इस वचन को सुनकर उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा से प्रभावित हुए बंकचूल ने कहा—

४७. यह सम्पूर्ण स्थान आपका ही है आप यहां सुखपूर्वक रहें और अन्यत्र न जाएं, यह मेरा निवेदन है ।

४८. उसकी बात सुनकर आचार्य ने कहा- मुनियों को सदा एक स्थान में रहना नहीं कल्पता ।

पावसे चउमासं य, सेसकालेसु सासयं ।
चिट्ठंति एगमासं य, विणा बीयं मुणीगणा ॥४९ ॥

वासो सेयो ण साहूणं, ठाणे एगम्मि सासयं ।
अओ गीयो विहारो य, जिणेहिं णवकप्पियो ॥५० ॥

जहा एगम्मि ठाणम्मि, पडियं विमलं जलं ।
लहेइ मइलत्तं[१२] य, भुवणे णिच्छियं सया ॥५१ ॥

तहा एगम्मि ठाणम्मि, णिवसेंतो मुणी सुई ।
सक्केइ साहणा-भट्ठो, होउं जिणेहि भासियं ॥५२ ॥(जुग्गं)

पणामिउण[१३] तं ठाणं, बंकचूलं गणीसरो ।
पट्ठाणं मोयचित्तो य, करेइ ससीसो तओ ॥५३ ॥

आगओ बंकचूलो य, तेहिं तया पहाविओ ।
छड्डिउं णिअसीमाअ, पेरंतं य गणाहिवं ॥५४ ॥

जया समागया सीमा, वंदिऊण गणाहिवं ।
जंपेइ बंकचूलो य, गग्गरहिअयो तया ॥५५ ॥

पुणो य दंसणं देज्जा, अम्हे य करुणाणिही ! ।
कुणेज्जा पावणं ठाणं, इणं पुणो कयाइ य ॥५६ ॥

सोच्चा णिवेयणं तस्स, आयरियो कहेइ य ।
दिण्णं पावस-जुग्गं णे[१४], ठाणं समुइयं तए ॥५७ ॥

विणा समुइयं ठाणं, णिविग्घा साहणा णहि ।
अओ पयस्स माहप्पं, समणाण कये सया ॥५८ ॥

ठाणम्मि वियणे कज्जं, जाव हुवेइ सासयं ।
ण होइ ताव ठाणम्मि, कोऊहलमये कया ॥५९ ॥

लहिऊण तुमे[१५] ठाणं, अम्हो य मुणिणो समे ।
साहणं उत्तमं काही, पसण्णचेयसा सना ॥६० ॥

---

(१२) मलिनत्वम् (प्रा.व्या. ८/२/१३७) ।

(१३) अर्पयित्वा (अर्पेरल्लिव-चच्चुप्प—पणामाः:—प्रा.व्या. ८/४/३९) ।

(१४) अस्माकम् ।

(१५) तव ।

४९. मुनिगण बिना कारण पावस में चार महीने और शेष काल में सदा एक मास रहते हैं।

५०. साधुओं के लिए सदा एक स्थान में रहना अच्छा नहीं है। अतः जिनेश्वर देव ने साधुओं के लिए नवकल्पिक विहार कहा है।

५१-५२. जिस प्रकार एक स्थान में पड़ा हुआ स्वच्छ जल भी मलिन बन जाता है, उसी प्रकार एक स्थान में रहने पर पवित्र मुनि भी साधना से भ्रष्ट हो सकता है ऐसा जिनेश्वर देव ने कहा है।

५३. बंकचूल को स्थान संभला कर आचार्य ने प्रसन्नचित्त होकर शिष्यों के साथ वहां से प्रस्थान किया।

५४. उनसे प्रभावित हुआ बंकचूल भी अपनी सीमा-पर्यन्त आचार्य को छोड़ने के लिए आया।

५५. जब सीमा आई तब आचार्य को वंदन कर बंकचूल गद्‌गद्‌ होकर कहने लगा—

५६. हे करुणानिधि ! आप हमें पुनः दर्शन देना और फिर कभी इस स्थान को पवित्र करना।

५७. उसका निवेदन सुनकर आचार्य ने कहा—तुमने हमें पावस योग्य उचित स्थान दिया।

५८. बिना समुचित स्थान के निर्विघ्न साधना नहीं हो सकती अतः साधुओं के लिए स्थान का महत्व है।

५९. जितना कार्य एकान्त स्थान में होता है उतना कोलाहलपूर्ण स्थान में नहीं।

६०. तुम्हारे स्थान को पाकर हम सब मुनियों ने प्रसन्नचित्त से उत्तम साधना की।

कयाइ वीसरिस्सं णो, साहिज्जं य इणं तुमे ।
पच्चुपकरिउं किंचि, वांछेमि हिअयं महं ॥६१ ॥

दिण्णो अज्जावहिं णाइं, उवएसो मए तुमं ।
वम्फेमि अहुणा किंचि, वज्जरिउं तुमं परं ॥६२ ॥

जइ सोउं हिअं तुज्झ, ऊसुअं होज्ज संपयं ।
तया दत्तावहाणेण, सुणेज्जा वयणं मम ॥६३ ॥ (जुग्गं) ।

सोच्चा इमं गिरं तेसिं, बंकचूलो भणेइ य ।
उवएसं य तं देज्जा, जो सक्को होइ मे कडे ॥६४ ॥

बोल्लेइ समयण्णू तं, आयरिओ तयाणि सो ।
चत्तारि णियमा एए, गेण्हेज्जा संपयं तुमं ॥६५ ॥

फलं अण्णायणामं य, ण भक्खेजा कयाइ तुं ।
पढुमे णियमे इत्थं, उरीकुणेज्ज संपयं ॥६६ ॥

सत्तट्ठाइं पयाइं उ, पच्छा समागइं विणा ।
कस्सुवरिं पहारं ण, कुणेज्जा य कयाइ तं ॥६७ ॥

इणं य णियमे बीये, अंगीकुणसु संपयं ।
तइये णियमे इत्थं, पडिसुणेज्ज संपयं ॥६८ ॥

मणेज्जा राइणो कंतं, माऊए सरिसं सया ।
चउत्थे णियमे इत्थं, पडिजाणेज्ज संपयं ॥६९ ॥

बलिउड्ढाण मंसं य, खाएज्जा ण कयाइ तं ।
गेण्हेज्जा णियमा सिग्घं, होहिंति ते सिवप्पया ॥७० ॥
(पंचहि कुलगं)

णिसम्म वयणं तस्स, मुणिवस्स महप्पणो ।
गेण्हेइ बंकचूलो य, चत्तारो णियमा य ता ॥७१ ॥

कारवित्ताण संकप्पं, बंकचूलं भणेइ सो ।
पालेज्जा णियमा एए, दिढत्तणेण सासयं ॥७२ ॥

लद्धूण पडिऊलं वि, ठिइं तुडेज्ज किंचि णो ।
कयाइ णियमा एए, सिक्खा य चरिमा महं ॥७३ ॥

६१. मैं तुम्हारे इस सहयोग को कभी नहीं भूलूंगा। मेरा हृदय कुछ प्रत्युपकार करना चाहता है।

६२—६३. मैंने आज तक तुमको उपदेश नहीं दिया। लेकिन अब कुछ कहना चाहता हूं। यदि तुम्हारा मन सुनने को उत्सुक हो तो ध्यानपूर्वक मेरे वचन सुनो।

६४. उनकी वाणी सुनकर बंकचूल ने कहा— वही उपदेश दें जो मेरे लिए शक्य हो।

६५. तब समयज्ञ आचार्य ने उसको कहा—तुम अभी इन चार नियमों को ग्रहण करो—

६६. (१) अज्ञात फल (जिस फल का नाम मालूम न हो) कभी मत खाना। यह प्रथम नियम में स्वीकार करो।

६७—७० (२) सात-आठ कदम पीछे हटे बिना किसी पर कभी प्रहार मत करना। यह दूसरे नियम में स्वीकार करो।

(३) राजा की पत्नी को माता के समान समझना। यह तीसरे नियम में स्वीकार करो।

(४) कौअे का मांस कभी मत खाना। यह चौथे नियम में स्वीकार करो।

इन चार नियमों को तुम शीघ्र ग्रहण करो। ये तुम्हारे लिए कल्याणप्रद होंगे।

७१. आचार्य के वचन सुनकर बंकचूल ने चारों नियम ग्रहण कर लिए।

७२. संकल्प करा कर उन्होंने बंकचूल से कहा- इन नियमों का सदा दृढ़ता से पालन करना।

७३. प्रतिकूल स्थिति को पाकर भी इन नियमों को नहीं तोड़ना यही मेरी अंतिम शिक्षा है।

पालिया दिढचित्तेण, रक्खेंति णियमा णरं ।
विवत्ती पउरा तेण, णासं गच्छेंति सासयं ॥७४ ॥

दाऊण बंकचूलं य, सिक्खं णं अंतिमं गणी ।
करेइ मोयचित्तेण, विहारं तक्खणं तओ ॥७५ ॥

सुदंसणं पुणो देज्जा, अम्हे अस्सिं पये तुमं ।
पत्थिय बंकचूलो य, आगच्छेइ णिअं पयं ॥७६ ॥

इइ पंचमो सग्गो समत्तो

७४. दृढ़ मन से पाले हुए नियम मनुष्य की रक्षा करते हैं। उससे बहुत विपत्तियां नष्ट हो जाती हैं।

७५. इस प्रकार बंकचूल को अंतिम शिक्षा देकर आचार्य ने प्रसन्नमना वहां से विहार कर दिया।

७६. आप पुनः हमें यहां पर दर्शन देना—यह प्रार्थना कर बंकचूल अपने स्थान पर आ गया।

पंचम सर्ग समाप्त

छट्ठो सग्गो

लोगे[1] वयाणं गहणं जया णो, किच्चं य णिच्चं सुयरं णराणं ।
घेत्तूण तेसिं परिवालणस्स, वत्ता कहं होहिइ दुक्करा णो ॥१॥

णेऊण ताइं मणुयो य जो य, पालेइ सम्मं दिढमाणसेणं ।
विवत्तिवग्गो य समागओ से, णासं य गच्छेइ अतक्तिकओ भो ! ॥२॥

बंकाइचूलो णियमा गहित्ता, रक्खेइ सम्मं मणसा तयाणिं ।
विवत्तिवग्गो य कहं य तस्स, णासेइ पेच्छंतु य पाढगा य ॥३॥

उण्हम्मि कालम्मि य एगया सो, णेऊण भिल्लाण णिआ सुसेणा ।
एगं य गामं किर लुट्टिउं य, वच्चेइ मोयं पउरं धरेंतो ॥४॥

लुट्टेउकामा य इणं य गामं, आयांति थेणा मिलिऊण अत्थ ।
गुत्तं रहस्सं लहिऊण इत्थं, सव्वे मणुस्सा चइऊण गामं ॥५॥

णेऊण अग्घं णिअवत्थुजायं, दाऊण गेहेसु य तालगा ते ।
वच्चेंति अण्णत्थ दुयं तयाणिं, थेणेहि भीया मणुया य सव्वे ॥६॥(जुग्गं)

भिल्लाण सेणाअ समं अकम्हा, सो आगओ तत्थ मुअं धरेंतो ।
दट्ठूण गामं मणुएहि सुण्णं, चित्तम्मि चित्तं पउरं पयायं ॥७॥

सव्वे वि मच्चा अहुणा य कुत्थ, गामं चइत्ताण समागया य ।
कालो य अम्हेहि वरो य लद्धो, णं लुट्टिउं मच्चसुण्णगामं ॥८॥

भासेइ भिल्ला सयराहमेव, गंतूण गेहेसु णयेज्ज वत्थुं ।
जं मोल्लवं भे[2] अहुणा मुणेज्जा, गेण्हेज्ज तं दुत्ति महं ति आणा ॥९॥

गच्छेंति सव्वे लहिऊण आणं, णेउं य वत्थूणि य मोल्लवाइं ।
णाइं य केणा वि परं य किंचि, वत्थुं पलद्धं य कडे वि पयत्ते ॥१०॥

ते रित्तहत्था सविहम्मि तस्स, आगम्म साहेंति तयाणि इत्थं ।
णूणं य णो[3] आगमणस्स भेयो, लद्धो णरेहिं अहुणा अओ ते ॥११॥

णेऊण वत्थुं णिअगं अणग्घं, भीया य अम्हेहि सयराहमेव ।
अण्णत्थ दाणिं य अओ गया ते, अम्हेहि वत्थुं अण किं वि पत्तं ॥१२॥(जुग्गं)

---

(१) छन्द-इन्द्रवज्रा (लक्षण-स्या. इन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः)। (२) यूयम्। (३) अस्माकम्।

षष्ठ सर्ग

१. संसार में व्रतोंको ग्रहण करना जब मनुष्यों के लिए सरल कार्य नहीं है तब उनको ग्रहण कर पालन करना कठिन क्यों नहीं होगा ?

२. जो व्यक्ति व्रतों को ग्रहण कर उनका दृढ मन से पालन करता है उसके अकल्पित आई हुई विपत्तियां भी नष्ट हो जाती हैं ।

३. बंकचूल नियम को ग्रहण कर उनका मन से पालन करता है । अत: उसकी आपदाएं किस प्रकार नष्ट होती हैं, पाठक देखें ।

४. एक बार वह ग्रीष्मकाल में प्रसन्नचित्त होकर अपनी भील सेना को लेकर एक गांव को लूटने के लिए गया ।

५-६. इस गांव को लूटने के लिए चौर मिलकर यहां आ रहे हैं– इस गुप्त रहस्य को पाकर भयभीत हो सभी मनुष्य अपनी कीमती वस्तुओं को लेकर, घर के ताला देकर और गांव छोड़कर अन्यत्र चले गए ।

७. बंकचूल भील सेना के साथ प्रसन्नतापूर्वक अचानक वहां आया । गांव को जनशून्य देखकर उसके मन में बहुत आश्चर्य हुआ ।

८. सभी मनुष्य गांव छोड़कर अभी कहां गए हैं ? हमें गांव लूटने का अच्छा अवसर मिला है ।

९. उसने भीलों से कहा- तुम शीघ्र घरों में जाओ और तुम्हें जो वस्तु मूल्यवान् प्रतीत हो उसे ले लो, यह मेरी आज्ञा है ।

१०. आज्ञा पाकर सभी भील कीमती वस्तु लेने गए । लेकिन प्रयत्न करने पर भी किसी को कोई वस्तु प्राप्त नहीं हुई ।

११-१२. तब वे रिक्तहस्त बंकचूल के पास आए और बोले—निश्चित ही हमारे आगमन का भेद उन लोगों को मिल गया था । अत: वे सभी अपनी समस्त मूल्यवान् वस्तुए लेकर और हम से भय खाकर अन्यत्र चले गए । इसीलिए हमें अभी कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ ।

होऊण भिल्ला णिहिला णिरासा, बंकाइचूलेण समं तयाणिं ।
गामं पलोट्टेंति[४] णिअं सखेया, अण्णं उवायं अण पासिऊण ॥१३ ॥

मग्गे पिवासाअ छुहाअ सव्वे, भिल्ला पयाया किर पीलिया य ।
ठाऊण कस्सावि अगस्स हेट्ठं, कुव्वेंति दूरं णिअगं समं[५] ते ॥१४ ॥

पच्छा अइच्छेंति[६] णरा य केइ, णेउं य भक्खाणि फलाणि काइ ।
ढुण्ढुल्लमाणा य समागया ते, रण्णम्मि कस्सिं तुरिअं तयाणिं ॥१५ ॥

दट्ठूण साही[७] सुफलेहि जुत्ता, मोयो य तेसिं हिअये य जाओ ।
णेऊण ताइं पउराइ सिग्घं, बंकाइचूलस्स गया समीवे ॥१६ ॥
भासेंति ताइं किर रक्खिउं ते, लद्धाणि अम्हे[८] बहुणा समेण ।
भक्खेज्ज सिग्घं य तुमं इमाइं, भोत्तुं य अम्हं इर देज्ज आणं ॥१७ ॥
(जुग्गं)

कालो वईओ पउरो य सामि !, अम्हं इयाणिं य बुहुक्खियाणं ।
सा दुस्सहा णे अहुणा पयाया, मा तुं विलंबं य अओ कुणेज्जा ॥१८ ॥

सोऊण तेसिं वयणं इणं य, बंकाइचूलस्स सइं समागया ।
चत्तारि ते दुत्ति वया तयाणिं, पासं गणीणं उररीकया जे ॥१९ ॥

तेसुं य एगो य अयं वि आसि, अण्णायणामं य फलं कयाइ ।
आजीवियं हं अण भक्खिहामि, णे[९] पुच्छियव्वा य अओ य सण्णा ॥२० ॥
(जुग्गं)

बंकाइचूलो य चवेइ ता य, किं णामधिज्जं य इमेसिमत्थि ।
ते सामिणो णं सुणिऊण वायं, बोल्लेंति णाइं य वयं मुणेमो ॥२१ ॥

बंकाइचूलो य तया कहेइ, णाइं इमाइं किर भक्खिहामि ।
अण्णायणामं ण फलं कयाइ, भक्खेज्ज[१०] अत्थि त्ति य मे पइण्णा ॥२२ ॥

सोऊण भासं पिसुणेंति ते य, णामं फलाणं अण जाणिमो भे ।
दट्ठूण णेसिं सुरहिं मुणेमो, णूणं फलाणि महुराणि संति ॥२३ ॥

कुज्जा विलंबं य अओ ण किंचि, णामाइपुच्छाअ भवं इयाणिं ।
खाएज्ज सिग्घं अहुणा इमाइं, देज्जा णिएसं छुहिया वि अम्हे ॥२४ ॥

---

(४) प्रत्यागच्छन्ति (प्रा.व्या. ८/४/१६६) । (५) श्रमम् ।
(६) गच्छन्ति (गमेरई-अइच्छाऽणुवज्जा.... प्रा.व्या. ८/४/१६२) ।
(७) वृक्षान् । (८) अस्माभिः । (९) मया । (१०) भक्ष्यामि ।

१३. अन्य उपाय न देखकर तब सभी भील खिन्न होकर बंकचूल के साथ अपने गांव की ओर लौट चले।

१४. मार्ग में सभी भील भूख और प्यास से पीड़ित हो गए। वे किसी वृक्ष के नीचे ठहर कर अपनी थकान दूर करने लगे।

१५. बाद में कुछ भील भक्ष्य फल लाने चले गए। वे फलों को ढूंढते हुए किसी वन में आए।

१६-१७. वहां फलों से युक्त वृक्षों को देखकर उनके मन में प्रसन्नता हुई। प्रचुर फल लेकर वे बंकचूल के पास आए और उन फलों को रखकर बोले- हमने इन फलों को बहुत श्रम से प्राप्त किया है। आप इन्हें शीघ्र खाएं और हमें भी खाने की आज्ञा दें।

१८. स्वामिन्! हम बहुत देर से भूखे हैं। अब हमसे भूख सही नहीं जाती। अत: आप देरी न करें।

१९-२०. उनका यह कथन सुनकर बंकचूल को उन चार नियमों की स्मृति हो गई जो उसने आचार्य (चंद्रयश) के पास ग्रहण किए थे। उनमें एक यह भी था कि मैं जीवन पर्यन्त अज्ञात फल नहीं खावूंगा। अत: उसने सोचा— मुझे इनका नाम पूछना चाहिए।

२१. बंकचूल ने उनसे कहा— इनका क्या नाम है? स्वामी का यह कथन सुनकर वे बोले— हम नहीं जानते हैं।

२२. तब बंकचूल ने उनसे कहा—मैं इनको नहीं खावूंगा। क्योंकि मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मैं कभी भी अज्ञात फल का भक्षण नहीं करूंगा।

२३. उसका कथन सुनकर उन्होंने कहा— हम इनका नाम नहीं जानते। किन्तु इनकी सुगन्धि को देखकर प्रतीत होता है कि ये स्वादिष्ट हैं।

२४. अब आप नाम आदि पूछने में विलम्ब न करें। आप इन्हें शीघ्र खाएं और हम भूखों को भी खाने का आदेश दें।

बंकाइचूलो य परं भणेइ, बद्धो पइण्णाअ अहं इयाणिं ।
सक्को ण भोत्तुं य फलाणि ताव, गोत्तं[११] ण होज्जा पगडं य जाव ॥२५ ॥

भासंति सव्वे छुहिया इयाणिं, पाणाण रक्खा वि य दुक्करा णो[१२] ।
पुव्वं अओ ता किर रक्खियव्वा, पच्छा कुणेज्जा णियमाण रक्खा ॥२६ ॥

होज्जा विणट्ठा जइ पाणहारा[१३], रक्खा वयाणं य कहं हुवेज्जा ।
जीओ[१४] णरो च्चेअ जगम्मि सव्वं, काउं समत्थो इह संसओ को ॥२७ ॥

सोऊण तेसिं वयणं तयाणिं, बंकाइचूलो पिसुणेइ[१५] ता य ।
रक्खा हुवेज्जा सुयरा वयाणं, लोए समेसिं अणुऊलकाले ॥२८ ॥

रक्खेंति ताइं पडिऊलकाले, ते संति मच्चा विरला जगम्मि ।
पायो मणुस्सा पडिऊलकालं, लद्धूण तोडेंति वयाणि झत्ति ॥२९ ॥
(जुग्गं)

लद्धुं मणुस्सा समयं विलोमं, तुट्टेंति णाइं णियमा कयाइ ।
ते च्चेअ सच्चं भुवणे वयाणं, आराहया होंति य माणवा य ॥३० ॥

पाणा विणट्ठा किर होज्ज वा णो, णाइं य चिंता हिअयम्मि मज्झं ।
भंगा ण होज्जा णियमा गहीया, चिंत त्ति चित्ते इमिआ इयाणिं ॥३१ ॥

णाइं फलाइं अहयं कयाइ, एआणि भो संपइ खाइहामि ।
भक्खेज्ज तुम्हे अहुणा वि माइं, एआ य मज्झं किर मंतणा य ॥३२ ॥

एगं य चिच्चा अवरो य को वि, णे मंतणं णो उररीकुणेइ ।
पासा विवत्ती य जया हुवेज्जा, णो रोयए भो ! हियया[१६] य वाणी ॥३३ ॥

भोत्तूण ताइं य फलाणि सिग्घं, संता बुहुक्खा विहिया समेहिं ।
काउं दविट्ठं णिअगं समं[१७] ते, सव्वे य णिद्दाअ वसं गया य ॥३४ ॥

कालो पयायो गमणस्स जया य, उट्ठेइ भिल्लो अण को वि तेसुं ।
जाणाइ को णो इमिआ य णिद्दा, तेसिं हुवेज्जा चिरकालिया य ॥३५ ॥

बंकाइचूलो य कहेइ भिल्लं, सद्दं कुणेज्जा गमणस्स दुत्ति ।
से मंतणं मण्णिअ जेण णाइं, ताइं फलाइं किर भक्खियाइं ॥३६ ॥

---

(११) नाम । (१२) अस्माकम् । (१३) प्राणधारा । (१४) जीवितः ।
(१५) कथयति । (१६) हितदा । (१७) श्रमम् ।

२५. बंकचूल ने कहा- मैं अभी प्रतिज्ञाबद्ध हूं। अत: जब तक इनका नाम प्रकट नहीं होगा तब तक मैं नहीं खा सकता।

२६. (यह सुन) सभी ने कहा- हम अभी भूखें हैं। हमारे प्राणों की रक्षा भी कठिन है। अत: पहले प्राणों की रक्षा करनी चाहिए, फिर नियमों की।

२७. यदि प्राण नष्ट हो जायेंगे तो व्रतों की रक्षा कैसे होगी ? जीवित व्यक्ति ही संसार में सब कुछ कर सकता है— इसमें क्या संदेह है ?

२८-२९. उनका कथन सुनकर बंकचूल ने कहा—अनुकूल समय में व्रतों की रक्षा करना सभी के लिए सरल है। किन्तु जो प्रतिकूल समय में भी व्रतों की रक्षा करते हैं वे संसार में विरले ही हैं। प्राय: मनुष्य प्रतिकूल समय को पाकर व्रतों को शीघ्र तोड़ देते हैं।

३०. जो व्यक्ति प्रतिकूल समय को पाकर भी व्रतों को नहीं तोड़ते हैं वे ही वास्तव में व्रतों के आराधक हैं।

३१. प्राण चाहे नष्ट हो या न हो इसकी मेरे मन में चिन्ता नहीं है। किन्तु ग्रहण किए हुए व्रत टूटे नहीं यही अभी चिन्ता है।

३२. इन फलों को मैं अभी नहीं खावूंगा और तुम लोग भी अभी मत खाओ यही मेरी सलाह है।

३३. एक भील को छोड़कर अन्य किसी ने उसकी मंत्रणा स्वीकार नहीं की। आपदाएं जब नजदीक होती है तब किसी को हितकारी बात अच्छी नहीं लगती।

३४. उन फलों को खाकर सबने अपनी भूख शांत की और अपने श्रम को दूर करने के लिए वे सब सो गए।

३५. जब जाने का समय हुआ तब उनमें से कोई भी नहीं उठा। कौन जानता है कि उनकी यह नींद चिरकालिक हो गई ?

३६. जिस भील ने बंकचूल की बात मानकर उन फलों को नहीं खाया था उसको बंकचूल ने कहा—शीघ्र ही जाने का शब्द करो।

लद्धूण आणं य कुणेइ सद्दं, उट्ठेइ भिल्लो अण को वि चित्तं ।
गंतूण उट्ठावहि तुं य सव्वे, बंकाइचूलो य तया कहेइ ॥३७ ॥

गंतूण चेट्ठं य कुणेइ भिल्लो, उट्ठाविउं सो अवरा य सुत्ता ।
उट्ठेज्ज भिल्लो अण को परं भो ! चित्ते तया अच्छरियं पयायं ॥३८ ॥

बंकाइचूलं य भणेइ सो य, उट्ठेज्ज णाइं मणुयो य को वि ।
सोऊण इत्थं हिअये सचित्तो, गच्छेइ पासं तुरिअं य तेसिं ॥३९ ॥

फासेइ हत्थेण तणुं य णेसिं, फंदेइ[१८] मच्चो अण को तयाणिं ।
णिण्णेइ सिग्घं हिअयम्मि इत्थं, सव्वे वि कालं य इमे गया य ॥४० ॥

सव्वे इयाणिं य कहं मया भो !, गुत्तं रहस्सं किर अस्स अत्थि ।
केणावि किं मच्छरमाणसेणं, देवेण णं झत्ति कडं य किच्चं ॥४१ ॥

वा दंसणे किं य मणोहराइं, जुत्ताणि गंधेण य बंधुरेणं ।
एआणि किं णो य फलाणि दाणिं, मच्चुस्स बीयं य इमेसिमत्थि ॥४२ ॥
(जुग्गं)

दट्ठुं तयाणिं य फलाणि ताइं, सो आगओ जत्थ फलाणि आसि ।
पुच्छेइ सो कं पहिअं तयाणिं, किं णामधिज्जं य इमेसिमत्थि ॥४३ ॥

भासेइ इत्थं पहिओ तयाणिं, एआणि किंपागफलाणि संति ।
भक्खेइ जो भो ! मणुओ इमाइं, गच्छेइ मच्चुं किर णिच्छियं सो ॥४४ ॥

सोऊण इत्थं पहिअस्स वाणिं, चिंतेइ चित्ते इर बंकचूलो ।
भोत्तुं मए ता पउरं णिसिद्धा, केणावि णाइं कहणं मयं[१९] मे ॥४५ ॥

सव्वे य णिद्देसयरा य मज्झं, उल्लंघिया तेहि य अज्ज आणा ।
आयांति मच्चाण जया कुघस्सा[२०], बुद्धी तयाणिं विवरीयमेइ ॥४६ ॥

बद्धो पइण्णाअ मए ण भुत्तं, मच्चुं गओ संपइ णो अओ य ।
दिण्णं य जेणं गणिणा वयं मे, तेसिं कियं भो उवयारमत्थि ॥४७ ॥

तेसिं किवाए अहयं इयाणिं, मच्चुस्स तोण्डम्मि[२१] समागओ णो ।
मे अण्णहा ता य दसा हुवेज्जा, हूआ इमेसिं किर जा इयाणिं ॥४८ ॥

---

(१८) स्पन्दते । (१९) मतम् ।
(२०) कुदिनाः । (२१) मुखे ।

३७. आज्ञा पाकर उसने शब्द किया लेकिन आश्चर्य है कोई भी नहीं उठा। तब बंकचूल ने कहा—तुम जाकर सबको उठाओ।

३८. उसने जाकर सोए हुए भीलों को उठाने की चेष्टा की। लेकिन कोई भी नहीं उठा तब वह विस्मय में पड़ गया।

३९. उसने बंकचूल से कहा- कोई भी नहीं उठता है। यह सुनकर मन में विस्मित हुआ बंकचूल शीघ्र उनके पास आया।

४०. उसने हाथ से उनके शरीर का स्पर्श किया। लेकिन कोई भी हिला-डुला नहीं। तब उसने मन में यह निर्णय किया कि ये सब मर गए हैं।

४१-४२. सब अभी कैसे मृत्यु को प्राप्त हो गए? इसका रहस्य क्या है? क्या किसी ईर्ष्यालु देव ने यह कार्य किया है? या देखने में सुन्दर और सुगन्धि-युक्त ये फल तो इनकी मृत्यु का कारण नहीं है।

४३. तब वह उन फलों को देखने के लिए वहां गया जहां फल लगे थे। उसने किसी पथिक से पूछा—इन फलों का क्या नाम है?

४४. तब पथिक ने कहा— ये किंपाक फल हैं। जो व्यक्ति इन्हें खाता है वह निश्चित ही मर जाता है।

४५. पथिक की बात सुनकर बंकचूल ने मन में सोचा—मैंने उनको खाने के लिए बहुत मना किया लेकिन किसी ने मेरी बात नहीं मानी।

४६. सभी मेरी आज्ञा का पालन करने वाले थे। लेकिन उन्होंने आज मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया। जब मनुष्य के बुरे दिन आते हैं तब उसकी बुद्धि भी विपरीत हो जाती है।

४७. मैं प्रतिज्ञाबद्ध था अतः मैंने नहीं खाया और अभी मृत्यु से बच गया। जिन आचार्य ने मुझे नियम दिलाया था उनका मेरे पर कितना उपकार है।

४८. उनकी कृपा से मैं काल कवलित नहीं हुआ। अन्यथा मेरी वही दशा होती जो अभी इनकी हुई है।

गामम्मि मज्झं चउरो य मासा, वासो कयो तेण किवापरेण ।
लाहो परं णो ममए य णीओ, सब्भग्गहीणो अहयं म्हि दाणिं ॥४९ ॥

हक्केइ लच्छि य समागयं य, सब्भग्गहीणो य गिहंगणम्मि ।
घत्तेइ[२२] मत्ता रयणं य पत्थं, हा ! कप्पवच्छं तुरिअं तुडेइ ॥५० ॥

दुक्खेण किं होहिइ संपयं य, रक्खा दिढत्तेण वयाण कुज्जा ।
सा आयईए हियया हुविस्सं, णो संसओ अत्थ मणम्मि किंचि ॥५१ ॥

इइ छट्ठो सग्गो समत्तो

(२२) क्षिप्यति (क्षिपेर्गलत्था.... घत्ता:-प्रा.व्या. ८/४/१३)

४९. उन कृपालु आचार्य ने मेरे गांव में चार मास निवास किया। लेकिन मैंने उनका लाभ नहीं उठाया। मैं भाग्यहीन हूं।

५०. भाग्यहीन व्यक्ति घर के आंगन में आई हुई लक्ष्मी को दुत्कारता है, रत्न को पत्थर समझ कर फेंक देता है और कल्पवृक्ष को शीघ्र तोड़ देता है।

५१. अब दुःख करने से क्या होगा ? व्रतों की दृढ़ता से रक्षा करनी चाहिए। वह भविष्य में निश्चित ही हितकारी होगी, इसमें तनिक भी मन में संशय नहीं है।

षष्ठ सर्ग समाप्त

सत्तमो सग्गो

कयम्मि[१] जस्सिं मणुयो य लाहं, लहेइ तस्सिं य रुई पवुड्ढिं ।
पयाइ णूणं पउरं जगम्मि, पुणो समं सो बहुलं कुणेइ ॥१ ॥

मणो विसायं तुरिअं पयाइ, कयम्मि दट्ठूण बहुं य हाणिं ।
इमा य विण्णाण-मया[२] य वत्ता, ण संसओ अत्थ य को वि अत्थि ॥२ ॥
(जुग्गं)

मणो पसण्णो लहिऊण लाहं, मणो अलाहं लहिऊण खिन्नो ।
हुवेइ जेसिं ण णराण किंचि, जगम्मि ते के विरला हवन्ति ॥३ ॥

वयस्स लाहं लहिऊण सक्खं, वयेसु सद्धा किर तस्स वुड्ढा ।
णियेण दासेण समं तयाणिं, समागओ सो णिअगम्मि गामे ॥४ ॥

जया य गेहम्मि सयम्मि आओ, णिसाअ एगो पहरो वईओ ।
गेहस्स दट्ठुं पिहिअं दुवारं, मणम्मि भावा य इमे पयाया ॥५ ॥

चरित्तहीणा अहवा सुसीला, महं य भज्जत्ति णिरिक्खणिज्जा ।
इणं य आलोइय बंकचूलो, घरस्स दारं णिअकोसलेण ॥६ ॥

तयाणि उग्घाडिय अंतराले, दुअं य वच्चेइ य चित्तचित्तो ।
णरेण केणं य समं य सुत्तं, वसं णिअं पेक्खिअ सम्मुहे सो ॥७ ॥

मणम्मि कोहो पउरो य जाओ, इणं विचिंतेइ य बंकचूलो ।
ण पच्चओ थीण कयाइ कुज्जा, इणं सया णीइ-वयं य सच्चं ॥८ ॥
(तीहिं विसेसगं)

असिं णिअं कड्ढिअ सो जया तं, णरं य हंतुं य समुज्जओ य ।
वयं य बीअं य तयाणि तस्स, सइं समाअं सयराहमेव ॥९ ॥

तयावि पालेइ वयं णिअं य, हियम्मि हंतुं किर आउरो सो ।
कयम्मि जस्सिं य लहेइ लाहं, जहेइ किं तं मणुयो कयाइ ॥१० ॥

वयस्स रक्खं करिउं जया सो, पयाइ सत्तट्ठ पयाणि पच्छा ।
तयाणि वारेण य टक्करेइ, असी य सिग्घं य अचिंतियं से ॥११ ॥

---

(१) छंद-उपेन्द्रवज्रा (लक्षण-उपेन्द्रवज्राजतजास्ततो गौ) । (२) विज्ञानमता ।

सप्तम सर्ग

१-२. जिस कृत कार्य में मनुष्य को लाभ प्राप्त होता है उसमें उसकी रुचि और अधिक बढ जाती है और वह पुन: अधिक श्रम करने लगता है ।कृत कार्य में हानि देखकर उसका मन खिन्न हो जाता है । यह विज्ञान सम्मत बात है, इसमें कोई संशय नहीं है ।

३. जिनका मन लाभ में प्रसन्न नहीं होता और अलाभ में खिन्न नहीं होता, वे विरले ही हैं ।

४. व्रत का साक्षात् लाभ पाकर बंकचूल की व्रतों के प्रति श्रद्धा बढ़ गई ।वह दास के साथ अपने गांव में आया ।

५. जब वह अपने घर पर आया तब रात्रि का एक प्रहर बीत गया था । घर के दरवाजे बंद देखकर उसके मन में ये विचार उत्पन्न हुए—

६-७-८. मेरी पत्नी चरित्र हीन है अथवा शीलवती—इसका मुझे निरीक्षण करना चाहिए । ऐसा विचार कर उसने अपनी कुशलता से दरवाजे खोले और विस्मयान्वित होकर अन्दर गया । अपनी पत्नी को किसी के साथ सोई हुई देखकर वह कुपित हो गया और इस प्रकार सोचने लगा—यह नीति वचन सत्य है कि स्त्रियों का विश्वास नहीं करना चाहिए ।

९. तलवार निकालकर जब वह उस पुरुष को मारने के लिए उद्यत हुआ तब शीघ्र ही उसे दूसरे नियम की स्मृति हो गई ।

१०. यद्यपि वह मारने के लिए आतुर था फिर भी अपने नियम का पालन करता है । जिस कृत कार्य में मनुष्य को लाभ प्राप्त होता है क्या वह कभी उसे छोड़ता है ?

११. व्रत का पालन करने के लिए जब वह सात-आठ कदम पीछे जाता है तब अचानक दरवाजे से उसकी तलवार टकरा जाती है ।

णिसम्म सद्दं असिणो य तस्स, सुसा तयाणिं इर जागरेइ ।
णिअं य बंधुं किर सम्मुहम्मि, विलोइउं सा य समुट्ठिआ य ॥१२॥

कुणेइ सिग्घं अहिवंदणं से, करेइ भो! मंगलकामणं य ।
समागयं बंधुवरं य दट्ठुं, पमोयए का भइणी ण लोए ॥१३॥
(जुग्गं)

णिअं सुसं सो पुरिसस्स वेसे, तयाणि दट्ठूण गओ य चित्तं ।
कहं य धत्तो पुरिसस्स वेसो, इमाअ दाणिं य कुणेइ चिंतं ॥१४॥

णिअं य बंधुं किर विम्हियं सा, णिहालिउं झत्ति य बंकचूला ।
भणेइ वेसे मणुयस्स मं य, विलोइउं ते हिअयम्मि णूणं ॥१५॥

अयं य पण्हो अहुणा य जाओ, कहं य धत्तो पुरिसस्स वेसो ।
अओ सुणेज्जा य रहस्सपुण्णं, वयं महं संसयणासगं य ॥१६॥
(जुग्गं)

तुहं पउत्तिं मुणिउं य गुत्तं, णिवस्स दूआ य णडस्स वेसे ।
समागया अज्ज इहं य सायं, इणं य णाऊण विचिंतिअं मे ॥१७॥

जया लहिस्संति इमं य वत्तं, ण तुं इयाणिं इहमत्थि य ।
तया करिस्संति हु ते विणासं, इमाअ वत्थीअ ण संसओ य ॥१८॥

अओ मए ते परिहाय वत्थं, दुअं तयाणिं णिउणेण भाय! ।
सहाअ आगम्म हु णाडगो य, मए य ते दुत्ति कराविओ य ॥१९॥

जया य णेऊण य दक्खिणं ते, गया य रत्ती पउरा वईआ ।
गिहम्मि आगम्म अहं य संता, विणा य वत्थं परिवट्टिऊण ॥२०॥

पयावईए य समं य सुत्ता, ण आसि हेऊ किर अस्स अण्णो ।
णिसम्म वत्तं भइणीअ इत्थं, मणम्मि चिंतेइ य बंकचूलो ॥२१॥
(जुग्गं)

अहो वयेणं य महं य पाणा, अहो वयेणं भइणीअ पाणा ।
सुरक्खिआ संपइ णिच्छिअं य, गई य का होइ य अण्णहा मे ॥२२॥

वया य अण्णे वि य पालणिज्जा, अओ मए भो! दिढमाणसेण ।
सया हुविस्संति सुहाय लोए, महं कये णिच्छियमायईए ॥२३॥

इइ सत्तमो सग्गो

१२-१३. तलवार का शब्द सुनकर उसकी बहन जग गई । अपने भाई को सम्मुख देखकर वह उठ खड़ी हुई और उसका अभिवादन तथा मंगलकामना करने लगी । भाई को आया हुआ देखकर कौन बहिन प्रसन्न नहीं होती ?

१४. अपनी बहिन को पुरुष-वेष में देखकर वह विस्मित हुआ और सोचने लगा- इसने इस समय पुरुष-वेष क्यों धारण कर रखा है ?

१५-१६. अपने भाई को विस्मित देखकर बंकचूला ने कहा—मुझे पुरुष वेष में देखकर तुम्हारे मन में निश्चित यह प्रश्न उत्पन्न हुआ होगा कि मैने अभी पुरुष-वेष क्यों धारण किया है ? अत: संशयनाशक मेरे रहस्यपूर्ण वचन सुनो ।

१७. तुम्हारी गुप्त प्रवृत्तियों को जानने के लिए राजा के दूत नट के वेष में आज सायंकाल यहां आए । यह जानकर मैंने सोचा—

१८. जब वे इस बात को पायेंगे कि तुम अभी यहां नहीं हो तो इस बस्ती को निश्चित ही उजाड़ देंगे, इसमें संदेह नहीं है ।

१९. अत: मैने चतुराई से तुम्हारे वस्त्र पहनकर सभा में आकर उनका नाटक करवाया ।

२०-२१ जब वे दक्षिणा लेकर गए तब बहुत रात बीत गई थी । मैं थक गई और घर आकर बिना वस्त्र बदले भाभी के साथ सो गई । इस पुरुष-वेष को धारण करने का अन्य कोई प्रयोजन नहीं था । बहिन की यह बात सुनकर बंकचूल मन में सोचने लगा—

२२. अहो ! व्रतों ने मेरे प्राणों की रक्षा की और व्रतों ने ही मेरी बहिन के प्राणों की रक्षा की । अन्यथा मेरी क्या गति होती ?

२३. अत: मुझे अन्य व्रतों का भी दृढमन से पालन करना चाहिए । निश्चित ही वे भविष्य में मेरे लिए सुखद होंगे ।

सप्तम सर्ग समाप्त

अट्ठमो सग्गो

जया[१] य गेण्हेंति वयाणि माणवा, गुरूण पासे अहवा सयेण वा ।
तयाणि तं भो !चलिउं परीसहा, कुणेंति चेट्ठं भुवणम्मि णिच्छियं ॥१ ॥
हुवेंति णाइं चलिया य माणवा, परीसहेहिं य जगम्मि जे कया ।
लहेंति लाहं हु अणुत्तरं सया, ण संसओ को वि य अत्थ विज्जए ॥२ ॥
पयाइ काउं रयणीअ एगया, स बंकचूलो कुसलो दिढव्वयी ।
णिवस्स कस्सा वि गिहम्मि एगगो, सुगुत्तरूवो करिउं य चोरियं ॥३ ॥
स-कोसलेणं य रिअेइ[२] अंतरे, जया तया सो सहसा णिहालणे ।
णिवस्स भज्जाअ य दुत्ति आगओ, समागया सा वि य तस्स दंसणे ॥४ ॥
तयाणि रूवं य णिहालिऊण से, हुवेइ मुद्धा इर राय-भारिया ।
सणेह-पुव्वं य कुणेइ पुच्छणं, तुमं य को भो ! कहमत्थ आगओ ॥५ ॥
कुओ इआणिं य समागओ तुमं, समं कहेज्जा चइऊण सज्झसं ।
ण अत्थ अण्णो मणुयो य विज्जए, अओ लवेज्जा हिअयस्स भासणं ॥६ ॥
(जुग्गं)

णिसम्म ताए य इणं पियं वयं, भयं दविट्ठं करिऊण सो तया ।
भणेइ गुत्तं णिअगं य संथवं, पियाअ वाणीअ ण होइ को वसो ॥७ ॥
अहं म्हि थेणो कुणिउं य चोरिअं, समागओ अत्थ परं ण कारणं ।
इमं य वाणिं सुणिऊण से तया, लवेइ राणी णिउणा य कामुआ ॥८ ॥
धणस्स णूणो अण अत्थ विज्जए, समं तुहं जं किर अत्थ विज्जए ।
लहेज्ज मोयं वसिऊण अत्थ तुं, करेज्ज चिंतं अण किं वि माणसे ॥९ ॥
करेमि णेहं पउरं य मं णिवो, तया वि सत्ता हुविऊण हं तए[३] ।
करेमि दाणिं णिगडिं य से दुयं, कुणेमि अप्पं तुमए समप्पणं ॥१० ॥
सुभग्गवं तुं मणुयो खु संपयं, समं पणामेमि अओ अहं तुमे[४] ।
उरीकुणेज्जा वयणं य सत्तरं, महं इणं अत्थि तुमे णिवेयणं ॥११ ॥
जया मणुस्सो य हुवेइ कामुओ, तया ण झाएइ कुलस्स भो ! जसं ।
करेइ किच्चं अहमं य सासयं, णिअं सरूवं वि य विम्हरेइ सो ॥१२ ॥

(१) छंद—वंशस्थ (लक्षण—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ) । (२) प्रविशति (प्रविशे रिअः—प्रा.व्या. ८/४/१८३)
(३) त्वयि । (४) तुभ्यम् ।

अष्टम सर्ग

१. जब व्यक्ति गुरु के पास या स्वयं व्रतों को ग्रहण करता है तब कष्ट उसे विचलित करने के लिए चेष्टा करते हैं।

२. जो व्यक्ति परीषहों से कभी चलित नहीं होते वे अपूर्व लाभ को प्राप्त करते हैं, इसमें संशय नहीं।

३. एक बार रात्रि के समय वह दृढव्रती, कुशल, बंकचूल चोरी के लिए अकेला ही किसी राजमहल में गुप्तरूप से जाता है।

४. जब वह अपनी दक्षता से अन्दर प्रविष्ट होता है तब अचानक शीघ्र ही रानी उसे देख लेती है और वह भी रानी को देख लेता है।

५-६. उसके रूप को देखकर रानी मुग्ध हो गई। उसने प्रेमपूर्वक पूछा— तुम कौन हो? यहां कैसे आए हो? और कहां से आए हो? निर्भय होकर सब कहो। यहां दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है अत: तुम अपनी मानसिक बात बताओ।

७. रानी के इस प्रकार प्रिय वचन सुनकर उसने निर्भय होकर अपना गुप्त परिचय दे दिया।

८. मैं चोर हूं और चोरी करने के लिए यहां आया हूं। अन्य कोई कारण नहीं है। उसकी यह बात सुनकर तब उस चतुर और कामुक रानी ने इस प्रकार कहा—

९. यहां धन का अभाव नहीं है, यहां जो कुछ भी है वह तुम्हारा है। यहां रहकर तुम आनन्द प्राप्त करो और मन में कुछ भी चिन्ता मत करो।

१०. यद्यपि राजा मुझे बहुत स्नेह करता है फिर भी मैं तुम्हारे में आसक्त होकर अभी उसका तिरस्कार करती हूं और तुम्हें अपना समर्पण करती हूं।

११. तुम निश्चित ही भाग्यवान् मनुष्य हो अत: मैं सब कुछ अर्पण करती हूं। शीघ्र मेरे वचन को स्वीकार करो, यही मेरा निवेदन है।

१२. जब मनुष्य कामुक हो जाता है तब वह कुल के यश को नहीं सोचता। वह अधम कार्य करता है और अपने स्वरूप को भी भूल जाता है।

सरूवमेयं भुवणस्स अब्भुअं, परेसु सत्तो हुविऊण माणवो ।
महेइ[५] सिग्घं चइउं णिअं पियं, ण विस्सासपत्तं इह को वि विज्जए ॥१३॥

णिसम्म राणीअ य ताअ भारइं, इमं फुडं कामपरायणं तया ।
समागयं से तइयं वयं दुअं, सईअ सो णं य करेइ चिंतणं ॥१४॥

दुवे वया जे पुरिमं य पालिया, मए य लाहो किर तस्स अकप्पिओ ।
तयाणि लद्धो अहुणा वि भावओ, वयं य पालेज्ज तइयं वि णिच्छियं ॥१५॥

वयाणुसारं इमिआ य संपयं, महं य माया-सरिसा य विज्जए ।
कहं तयाणिं उररीकुणेज्ज हं, इणं इमाए अहुणा णिवेयणं ॥१६॥

वयं इमाए जइ णो य संपयं, उरीकरिस्सं य तयाणि णिच्छियं ।
इमा य देइस्सइ मज्झ ताडणं, चयइ[६] काउं बलवं य किं य णो ॥१७॥

परं अहं दंडभया य लोहओ, वयं चइस्सामि णिअं कयाइ णो ।
मईअ दंडं जइ देज्ज संपयं, समं य देज्जा अहवा णिअं धणं ॥१८॥

इत्थं य आलोइअ तेण साहिअं, वयं य णाइं पडिजाणिहामि[७] ते ।
सोऊण इत्थं वयणं य से तया, कहेइ कोवं लहिऊण माणसे ॥१९॥

उरीकरिस्सेसि जया णो वयं, समागमिस्सेइ तयाणि किं फलं ।
विचिंतियं किं हिअयम्मि संपयं, अओ वियारेज्ज पुणो वि किंचि तुं ॥२०॥

णिवस्स कंताअ णिसम्म णं वयं, मणम्मि भीइं अण किंचि गओ सो ।
कहेइ राणिं तुरिअं य णिब्भयं, वयस्स रक्खं करिउं य तप्परो ॥२१॥

परं हुविस्सं किर किं य मच्चुणो, इयाणि दंडं अहुणा य णिच्छियं ।
तमेव अंगीकुणिउं य पच्चलो, वयस्स भंगं करिउं ण संपयं ॥२२॥

अओ जहेच्छं अहुणा करेज्ज तुं, परं समत्थो ण वयं य मण्णिउं ।
फुडं वयं तस्स णिसम्म णं तया, णिवस्स कंता कुविआ य माणसे ॥२३॥

इमस्स दुट्ठस्स इयाणि सत्तरं, मए य देयं पउरं य ताडणं ।
उवेक्खिआ हं य अणेण संपयं, वयं मयं णो य अणेण मामगं ॥२४॥

(५) कांक्षति । (६) शक्नोति ।
(७) प्रतिज्ञास्यामि-स्वीकरिष्यामि इत्यर्थः ।

१३. संसार का यह विचित्र स्वरूप है कि मनुष्य दूसरे में आसक्त होकर अपने प्रिय को भी छोड़ना चाहता है । इस संसार में कोई भी विश्वासपात्र नहीं है ।

१४. रानी की स्पष्ट और कामासक्त इस वाणी को सुनकर उसे शीघ्र तीसरे नियम की स्मृति हो गई । अत: वह इस प्रकार सोचने लगा—

१५. मैंने पहले जिन दो नियमों का पालन किया था उसका मुझे अचिंतित लाभ प्राप्त हुआ था । अत: मुझे तीसरे नियम का भी मन से पालन करना चाहिए ।

१६. नियम के अनुसार यह मेरी माता के समान है । तब मैं इसके वचन को कैसे स्वीकार करूं ?

१७. यदि मैं इसके वचन को स्वीकार नहीं करूंगा तो यह निश्चित ही मुझे ताडना देगी । शक्ति संपन्न व्यक्ति क्या नहीं कर सकता ?

१८. लेकिन मैं दण्ड या प्रलोभन से कभी अपने नियम को नहीं छोडूंगा । चाहे यह मृत्यु दंड दे या अपना सब धन ।

१९. इस प्रकार सोचकर उसने कहा- मैं तुम्हारे वचन को स्वीकार नहीं करूंगा । उसके इस कथन को सुनकर रानी ने क्रुद्ध होकर कहा—

२०. यदि तुम मेरे वचन को स्वीकार नहीं करोगे तो उसका क्या फल पाओगे, क्या तुमने हृदय में विचार किया है ? अत: तुम पुन: कुछ सोचो ।

२१. रानी के इस वचन को सुनकर वह भयभीत नहीं हुआ । वह व्रत रक्षा करने में तत्पर था । अत: निर्भीक होकर रानी को कहा—

२२. मृत्यु के सिवाय दूसरा क्या दंड हो सकता है ? मैं उसे अभी स्वीकार करने में समर्थ हूं किन्तु व्रत भंग करने में नहीं ।

२३. अत: तुम्हारी जैसी इच्छा हो बैसा करो किन्तु मैं तुम्हारा कथन नहीं मान सकता । उसके इस स्पष्ट वचन को सुनकर रानी मन में कुपित हुई ।

२४. इस दुष्ट को अभी प्रचुर ताडना देनी चाहिए । इसने मेरी उपेक्षा की है और मेरे कथन को अस्वीकार किया है ।

इणं य आलोइय सा णिअं तणुं, णहेण सिग्घं करिऊण विक्खयं ।
समुद्दलित्ता[८] वसणं य सा णिअं, कुणेइ सद्दं य इणं य उच्चअं[९] ॥२५॥

दुआरवालो ! अहुणा करेसि किं, समागओ को उअ[१०] मे णियेयणे ।
रवं य इत्थं सुणिऊण ताअ सो, पलायमाणो तुरिअं समागओ ॥२६॥

दुअं य घेत्तूण तयाणि तक्करं, करेसु दाऊण य तस्स बंधणं ।
पयाइ णेऊण जया य बाहिरं, तयाणि भूवो य करेइ इंगियं ॥२७॥

ण देज्ज एअं किर गाढबंधणं, पगे य आणेसु महं य सम्मुहे ।
णिवस्स इत्थं लहिऊण इंगियं, गओ स कायव्वपरायणो तया ॥२८॥
(जुग्गं)

जया य थेणेण समं य भासणं, करेइ राणी य तयाणि भूहवो ।
हठा समागम्म सुणेइ विम्हिओ, समं य वत्तं किर गुत्तरूवओ ॥२९॥

णियेहि णेत्तेहि तया विसेसओ, णिवेण राणीअ कयं णिहालियं ।
अओ मणो से करिउं य उच्छुओ, इमीण णायं उइयं य सत्तरं ॥३०॥

जया य बीअे दिवहम्मि[११] तक्करं, दुवारवालो गहिउं समागओ ।
तयाणि पुच्छेइ णिवो य तक्करं, णिसाअ राणीअ समं य किं कडं ॥३१॥

णिसम्म वाणिं णिवइस्स तक्करो, लवेइ तच्चं घडणं समं तया ।
वयं सुणेऊण फुडं य से तया, भणेइ भूवो य पुणो य तं इणं ॥३२॥

महं पसाये सुयरा य णो गई, तहिं वि राणीअ य अंतिये सया ।
कये जणाणं भुवणम्मि दुक्करा, गओ तुमं तत्थ अओ सि साहसी ॥३३॥

अओ य राणिं अहुणा य देमि ते, इमं य दट्ठूण तुहं य साहसं ।
णिवस्स वाणिं सुणिऊण तक्खणं, कहेइ इत्थं परिपंथिओ य सो ॥३४॥
महं सवित्ती सरिसा य विज्जए, भवस्स कंता अहुणा य भूहरो ! ।
अओ य णेउं ण कयाइ पक्कलो[१२], पुणो वि इत्थं ण लवेज्ज मं भवं ॥३५॥
गिरं इमं से सुणिऊण भूहवो, भणेइ वत्तं परिवट्टिऊण तं ।
महं य राणीअ समं तुमं[१३] सुवे, कुणीअ दुट्ठं ववहारमओ तुमे[१४] ॥३६॥

---

(८) उद्दालियं अछिन्नं (फाड़ा हुआ) पाइयलच्छी नाममाला—५०० ।

(९) उच्चैः (उच्चैर्नीचैस्यअः—प्रा.व्या. ८/१/१५४) । (१०) उअ पश्य (प्रा.व्या. ८/२/२११) ।

(११) दिवसे (दिवसे सः—प्रा.व्या. ८/१/२६३) । (१२) समर्थः- (पाइयलच्छी नाममाला—५२) ।

(१३) त्वम् । (१४) त्वाम् ।

२५. ऐसा सोचकर नख से अपने शरीर को क्षत-विक्षत बना कर और अपने कपड़ों को फाड़कर वह इस प्रकार उच्चस्वर से आवाज करने लगी—

२६. द्वारपाल ! तुम अभी क्या कर रहे हो ? देखो मेरे महल में कौन आ गया ? रानी के इस प्रकार का शब्द सुनकर वह (द्वारपाल) दौड़ता हुआ शीघ्र वहां आया ।

२७-२८. चोर को पकड़कर उसके हाथ में बंधन (हथकड़ी) डाल कर जब वह बाहर जाने लगा तब राजा ने उसे संकेत किया इसको गाढ़ बन्धन मत देना । सुबह मेरे सम्मुख इसको लाना । इस प्रकार राजा का संकेत पाकर वह कर्तव्यदक्ष द्वारपाल चला गया ।

२९. जब रानी चोर के साथ बात कर रही थी तब अचानक राजा वहां आ गया । उसने विस्मित होकर गुप्तरूप से सब बातें सुनीं ।

३०. राजा ने रानी के कृत कार्यों को विशेष रूप से अपनी आंखों से देखा था । अत: उसका मन इसका शीघ्र ही उचित न्याय करने का इच्छुक था ।

३१. दूसरे दिन जब द्वारपाल चौर को लेकर आया तब राजा ने चौर को पूछा— तुमने रात्रि में रानी के साथ क्या किया ?

३२. राजा की वाणी सुनकर चौर ने समस्त घटना यथार्थ बता दी । उसके स्पष्ट वचन सुनकर राजा ने पुन: उससे यह कहा—

३३. मेरे महल में जाना सरल नहीं है । उसमें रानी के पास जाना तो मनुष्यों के लिए सदा कठिन है । तुम वहां गए अत: साहसी हो ।

३४. मैं तुम्हारे इस साहस को देखकर तुम्हें रानी प्रदान करता हूं । राजा की बात सुनकर चोर ने तत्काल इस प्रकार कहा—

३५. राजन् ! आपकी पत्नी मेरी माता के समान है । अत: मैं उसे कभी ग्रहण नहीं कर सकता । आप पुन: ऐसा न कहें ।

३६-३७. उसकी बात सुनकर राजा ने बात बदल कर कहा—तुमने कल रानी के साथ अभद्र व्यवहार किया था, अत: या तो रानी को स्वीकार करो या मृत्यु दंड को । राजा की यह वाणी सुनकर बंकचूल ने इस प्रकार कहा—

अओ य राणीमुररीकुणेज्ज तं, मईअ[१५] डंडं अहवा य संपयं ।
णिसम्म इत्थं णिवइस्स भारइं, स बंकचूलो य भणेइ णं[१६] तया ॥३७॥
(जुग्गं)

चयेमि डंडं गहिउं य मच्चुणो, परं य राणिं गहिउं कयाइ णो ।
वयं इणं से सुणिऊण गोवई, मणम्मि हूओ पउरो पहाविओ ॥३८॥

णिअं सुयं तं करिऊण सत्तरं, तयाणि रक्खेइ सयस्स अंतिये ।
णिअं य कंतं अवराहिणिं य सो, तया य डंडं इर देइ मच्चुणो ॥३९॥
(जुग्गं)

इमं य सोऊण णिवस्स भारइं, स बंकचूलो पडिऊण सत्तरं ।
णिवस्स पायेसु इणं णिवेयए, ण देज्ज डंडं महिसिं य मच्चुणो ॥४०॥

राणी महं अंबसमा य विज्जए, अओ ण डंडं य इणं य देज्ज तं ।
इमं य सोऊण य से णिवेयणं, करेइ मुत्ता य मईअ डंडओ ॥४१॥

परं विचिंतेइ णिवो स-माणसे, चरित्तहीणा इमिआ हु विज्जए ।
अओ य वम्फेमि ण किंचि माणसे, इमं कुसीलं अहयं कयाइ भो ! ॥४२॥

चरित्तहीणेण समं वसेइ जो, करेइ पीइं अहवा य सासयं ।
चरित्तहूणो च्चिअ सो वि भावओ, हुवेइ मच्चो त्ति कहेंति कोविया ॥४३॥

अओ इमं हं ण कयाइ पच्चलो, णिअम्मि गेहे अहुणा रक्खिउं ।
णिअं परं होज्ज य को वि माणवो, णिवो य डंडेज्ज सया कुकम्मियं ॥४४॥

चरित्तहीणो णिवई य अत्थि जो, चरित्तहूणा अहवा य भारिया ।
हुवेइ णूणं पडणं य से सया, जणप्पियो सो हुविउं ण पक्कलो ॥४५॥

मणम्मि इत्थं करिऊण चिंतणं, चवेइ[१७] भूवो णिअगा य किंकरा ।
कुणेज्ज बाहिं[१८] ममए य मंदिरा, इमं कुसीलं तुरिअं य संपयं ॥४६॥

णिवस्स आणं लहिऊण डिंगरा, कुणेइ राणिं सहसत्ति बाहिरं ।
करेइ कम्मं मणुयो य कुच्छियं, फलं य सो तस्स लहेइ कुच्छियं ॥४७॥

सुअस्स रूवेण णिवस्स अंतिये, स बंकचूलो इर भूवमंदिरे ।
वसेइ आणीय सुसं य भारियं, चएइ[१९] किच्चं अहमं य चोरियं ॥४८॥

इइ अट्ठमो सग्गो समत्तो

---

(१५) मृत्योः । (१६) इमम् । (१७) कथयति ।
(१८) बहिः (बहिसो बाहिं बाहिरौ—प्रा.व्या. ८/२/१४०) । (१९) त्यजति ।

३८-३९. मैं मृत्यु दंड ग्रहण कर सकता हूं किन्तु रानी को कभी नहीं । उसका यह वचन सुनकर राजा मन में बहुत प्रभावित हुआ । उसने उसे शीघ्र अपना पुत्र बनाकर अपने पास रख लिया और अपनी अपराधिनी पत्नी को मृत्युदंड दे दिया ।

४०. राजा की यह वाणी सुनकर बंकचूल ने राजा के पैरों में गिर कर इस प्रकार निवेदन किया—रानी को मृत्यु दंड न दें ।

४१. रानी मेरी माता के समान है । अत: इसे यह दंड न दें । उसका यह निवेदन सुनकर राजा ने उसे मृत्यु दंड से मुक्त कर दिया ।

४२. लेकिन राजा ने अपने मन में विचार किया— यह चरित्रहीन है । अत: मैं इसे किंचित् भी नहीं चाहता ।

४३. जो व्यक्ति चरित्रहीन के साथ रहता है या उससे सदा प्रेम करता है वह भाव से चरित्रहीन ही है, ऐसा ज्ञानियों ने कहा है ।

४४. अत: मैं इसे कभी भी अपने महल में नहीं रख सकता । चाहे अपना हो या पराया, बुरे कार्य करने वाले को राजा सदा दंडित करे ।

४५. जो राजा चरित्रहीन होता है या उसकी पत्नी चरित्रहीन होती है उसका निश्चित ही पतन होता है । वह कभी जनप्रिय नहीं हो सकता ।

४६. इस प्रकार मन में विचार कर राजा ने अपने अनुचरों से कहा— इस कुशीला को शीघ्र ही मेरे महल से बाहर निकाल दो ।

४७. राजा की आज्ञा पाकर अनुचरों ने तत्काल रानी को बाहर निकाल दिया । जो व्यक्ति बुरा काम करता है, वह उसका बुरा ही फल पाता है ।

४८. बंकचूल अपनी बहिन और पत्नी को राजमहल में लाकर पुत्र रूप में राजा के पास रहता है और चोरी करना छोड़ देता है ।

अष्टम सर्ग समाप्त

णवमो सग्गो

णिअं[1] उवयारिं इह जो णरो, वीसरेइ भुवणम्मि सासयं ।
साहेंति तं विबुहा कयग्घं, लहेइ सो ण कयाइ सक्कइं ॥१ ॥
जस्स दिण्ण-वयेहिं य पाणा, बंकाइचूलस्स हु रक्खिआ ।
रक्खिआ भइणीअ य पाणा, दिण्णा तस्स पउरा संपया ॥२ ॥

तं उवयारिं खलु मुणीवइं, सरेइ बंकचूलो पइवलं ।
करेइ मणम्मि सो हु भावणं, गणाहिवस्स दंसणस्स सया ॥३ ॥(जुग्गं)

अण हुवेइ कयाइ णिरत्थया, सुद्धहियेण विहिया भावणा ।
आगया तत्थ ते विहरंता, आयरिया सहसा य ससीसा ॥४ ॥

लद्धूण अकप्पियं य वुट्ठिं, मोयए जहा किसगाण मणो ।
तह बंकचूलस्स वि चित्तं, मोयए य लहिऊण दंसणं ॥५ ॥

कुव्वेइ आयरियस्स सेवं, सुणेइ धम्मं सुहयं य तेण ।
लहेइ तस्स संगस्स लाहं, जवेइ कालं मुहा अण किंचि ॥६ ॥

णाऊण सो वयस्स महत्तं, पडिसुणेइ इर सावगधम्मं ।
पालेंतो दिढत्तणेण तं य, करेइ पइक्खणं जागरणं ॥७ ॥

आओ तत्थ दंसणं काउं, आयरियस्स तस्स य महप्पणो ।
सावगो सालिग्गामवासी, जिणाइदासणामो एगया ॥८ ॥

जाओ तेण समं य संथवं, बंकचूलस्स तस्स तयाणिं ।
साहम्मियत्तेण परोप्परे, हूआ तेसिं पउरा मित्ती ॥९ ॥

ठाऊण किंचि कालं य तत्थ, कडो आयरियेण हु विहारो ।
मणम्मि तस्स पउरो विसायो, बंकचूलस्स तयाणि आओ ॥१० ॥

णिवेयए सविणयं मुणीवइं, देज्जा पुणो वि अम्ह[2] दंसणं ।
हूओ जो अवराहो मज्झा[3], खमेज्ज तं समं हे किवालो ! ॥११ ॥

---

(१) छंद-पज्झटिका (लक्षण-तुलसी पज्झटिकां कुरु नित्यम्)। इसमें १६ मात्रा होती हैं।
(२) माम्। (३) मत्

नवम सर्ग

१. जो व्यक्ति अपने उपकारी को भूल जाता है उसे ज्ञानियों ने कृतघ्न कहा है। वह कभी सत्कार नहीं पाता।

२-३. जिसके दिए हुए व्रतों से बंकचूल तथा उसकी बहिन के प्राणों की रक्षा हुई और उसने विपुल संपदा प्राप्त की, उस उपकारी आचार्य का बंकचूल प्रतिपल स्मरण करता है और मन में उनके दर्शनों की भावना करता है।

४. शुद्ध हृदय से की हुई भावना कभी निरर्थक नहीं होती। वे आचार्य विहार करते हुए शिष्यों के साथ अचानक वहां आ गए।

५. जिस प्रकार अकल्पित वृष्टि को पाकर किसानों का मन प्रसन्न होता है उसी प्रकार बंकचूल का मन भी आचार्य के दर्शन पाकर आनन्दित हो रहा था।

६. वह आचार्य की सेवा करता है और उनसे शुद्ध धर्म का श्रवण करता है। वह उनके सान्निध्य का लाभ उठाता है। समय को व्यर्थ नहीं गंवाता।

७. व्रतों का महत्व जानकर वह श्रावक-धर्म (श्रावक के बारह व्रत) स्वीकार करता है और उसका दृढता से पालन करता हुआ प्रतिक्षण धर्मजागरण करता है।

८. एक बार उन आचार्य का दर्शन करने के लिए शालिग्रामवासी श्रावक जिनदास आया।

९. तब बंकचूल का उसके साथ परिचय हुआ। साधर्मिकता के कारण उनकी परस्पर में प्रगाढ़ मैत्री हो गई।

१०. वहां कुछ समय ठहर कर आचार्य ने विहार कर दिया। बंकचूल का मन बहुत दुःखी हुआ।

११. उसने विनयपूर्वक आचार्य से निवेदन किया- आप पुनः मुझे यहां दर्शन देना। मुझसे जो अपराध हुआ है उसे क्षमा करें।

देइ सिक्खं तया गणीवरो, रमेज्ज धम्मे तुमं सासयं ।
धम्मो सहाओ सया णराण, धम्मो ताणं सरणं गई य ॥१२॥

वयाइं गहियाइं णिआइं, तुमं दिढत्तेणं रक्खेज्जा ।
होहिंति सया तुह सुहियाइं, माइं कयाइ ताणि चएज्जा ॥१३॥

दाऊण तस्स इमं य सिक्खं, कडो आयरियेण विहारो ।
गच्छेइ छड्डिउं तं तयाणिं, बंकचूलो वि किंचि दविट्ठं ॥१४॥

समागया जया रज्ज-मेरा[४], कहेइ बंकचूलो रुवंतो[५] ।
पुणो य देज्जा अम्ह दंसणं, हे दयालो ! गणीवरो !भव्वं ॥१५॥

इत्थं णिवेऊण गणाहिवं, सो कारेइ तस्स य विहारं ।
गये दविट्ठे गणिणो तयाणि, आओ विमणो सो पासाये ॥१६॥

मणो तयाणि तस्स णो लग्गइ, कम्मि कज्जम्मि बंकचूलस्स ।
परं झाउं साहूण मेरं, देइ आसासणं णियं मणं ॥१७॥

सुमरेंतो गणिं हुं पइक्खणं, कुणेइ धम्म-जागरणं सया ।
बोल्लेइ[६] सो णियगं य कालं, धम्मकज्जेसु चेअ सासयं ॥१८॥

इत्थं वईआ केइ वासरा, अक्कमेइ एगया ससेणो ।
कामरूवदेसस्स सासगो, तस्सिं य रज्जम्मि य अकम्हा ॥१९॥

णाऊण इमं तयाणि वत्तं, कहेइ भूवई बंकचूलं ।
पुत्त ! तुमं तुरिअं गच्छेज्जा, बलं णेऊण करिउं जुद्धं ॥२०॥

अण वांछेइ कम्मि अक्कमणं, परं जया को वि ओहावेइ[७] ।
तया काउं देसस्स रक्खं, जुज्झेइ य अहिंसाणिट्ठगो ॥२१॥

णो कुव्वेइ कयाइ पलायणं, पालेइ सइ सो स-कायव्वं ।
मूसा इणं विज्जए कहणं, कायरा होंति सया अहिंसगा ॥२२॥(जुग्गं)

---

(४) सीमा (सीमा मेरा—पाइयलच्छी नाममाला ७०२) । (५) रुदन् (रुदनमोर्वः—प्रा.व्या. ८/४/२२६)
(६) व्यत्येति । (७) आक्रामति (आक्रमेरोहावोत्थारच्छुन्दाः- प्रा.व्या.८/४/१६०) ।

१२. तब आचार्य ने शिक्षा देते हुए कहा- तुम सदा धर्म में रत रहना। धर्म ही मनुष्यों का सदा सहायक है। वह ही त्राण, शरण और गति है।

१३. तुम गृहीत व्रतों का दृढता से पालन करना। वे सदा तुम्हारे लिए सुखदायी होंगे। उनको कभी मत छोड़ना।

१४. उसको यह शिक्षा देकर आचार्य ने विहार कर दिया। उनको छोड़ने के लिए बंकचूल कुछ दूर गया।

१५. जब उसके राज्य की सीमा आई तब बंकचूल ने रोते हुए कहा— हे कृपालुगणाधिपति ! मुझे पुनः दर्शन देना।

१६. इस प्रकार आचार्य को निवेदन कर उसने उनका विहार करा दिया। आचार्य के दूर जाने पर वह खिन्न होकर महल में लौट आया।

१७. उसका किसी कार्य में मन नहीं लगता है। लेकिन साधुओं की मर्यादा को ध्यान में रखकर वह अपने मन को आश्वासन देता है।

१८. आचार्य का प्रतिपल स्मरण करता हुआ वह सदा धर्म जागरण करता है और अपने समय को धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत करता है।

१९. इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। एक बार कामरूप देश के राजा ने सेना सहित उस राज्य पर अचानक हमला कर दिया।

२०. यह बात जानकर राजा ने बंकचूल से कहा— पुत्र ! तुम सेना लेकर शीघ्र युद्ध करने जाओ।

२१-२२. अहिंसा निष्ठ व्यक्ति किसी पर आक्रमण करना नहीं चाहता। लेकिन जब कोई आक्रमण करता है तब वह देश की रक्षा के लिए लड़ता है। वह कभी पलायन नहीं करता। सदा अपने कर्तव्य का पालन करता है। यह कथन असत्य है कि अहिंसक सदा कायर होते हैं।

णेऊण तया पउरा सेणा, वच्चेइ सिग्घं य बंकचूलो ।
करेइ समरमुच्छाहपुव्वं, बीहेइ णाइं मणम्मि किंचि ॥२३॥

तस्स परक्कमस्स सम्मुहे, अरिसेणा ठाउं ण पच्चला ।
आइच्चस्स य सम्मुहम्मि किं, सक्केइ ठाउं अंधयारो ॥२४॥

सणियं सणियं विपक्खसेणा, गच्छेइ चइउं जुद्धभूमिं ।
सक्केइ को ठाउं माणवो, कयाइ बलिणो य सम्मुहे ॥२५॥

लद्धूण तत्थ जयं अपुव्वं, समागओ सो णिअगं देसं ।
मोअइ बहुं णिवस्स माणसं, देइ तयाणिं तं बहुमाणं ॥२६॥

दट्ठूण तस्स सुंदरं वउं, अरिसेणा कयप्पहारेहिं ।
वण-पूरियं तयाणिं खेओ, मणम्मि णिवस्स पउरो जाओ ॥२७॥

आगारेऊण दुत्ति विज्जा, कारेइ तस्स तया तिगिच्छं ।
परं वणा अण हुवेंति सम्मं, कये वि पउरे पयत्ते तेसि ॥२८॥

पइदिणं वड्ढए से पीला, होइ बंकचूलो ण वाउलो[८] ।
सहेइ समभावाउ तं तया, मुणिऊण स—कम्माण विवागं ॥२९॥

धम्मण्णू सहेइ समभावा, समागयं दुक्खं य समत्थं ।
हुवेइ समभावा हु णिच्छियं, तयाणि तस्स कम्मणिज्जरणं ॥३०॥

अहम्मण्णू कुणेइ विलावं, समागयम्मि दुहाण सासयं ।
बंधेइ सो णव्वकम्माइं, अओ दुहं सहेज्ज समभावा ॥३१॥

णिहालिऊण तस्स य वेयणं, वुड्ढिं गयं इत्थं खिइवई ।
पच्चारेइ[९] सो य तिगिच्छगा, कहेइ सिग्घं कुणेज्ज कल्लं[१०] ॥३२॥

सोऊण णिवस्स उवालंभं, भासेंति तयाणिं विज्जवरा ।
जाणेमो अम्हे हे भूवो !, भवाण माणसस्स हु वेयणं ॥३३॥

परं वणा संति य अइगहणा, ओसहमओ ण करेइ कज्जं ।
अहुणा अत्थि एगो उवायो, जेण समत्थो हुविउं सत्थो ॥३४॥

को सो अत्थि एगो उवायो, पुच्छेइ णिवो विम्हयं गओ ।
साहेइ तया एगो विज्जो, अत्तविस्सासपुरिमं इत्थं ॥३५॥

---

(८) व्याकुलः (९) उपालम्भते (उपालम्भेर्झङ्ख-पच्चार-वेलवाः— प्रा.व्या. ८।४।१५६)।
(१०) स्वस्थम् (कल्लो सत्थो पडू-पाइयलच्छी नाममाला- ४८६)।

२३. बंकचूल प्रचुर सेना लेकर जाता है और उत्साह पूर्वक युद्ध करता है। उसके मन में किंचित् भी भय नहीं है।

२४. उसके पराक्रम के सम्मुख शत्रु सेना ठहर नहीं सकी। क्या सूर्य के सम्मुख अन्धकार टिक सकता है ?

२५. धीरे-धीरे शत्रु सेना युद्ध-भूमि को छोड़कर जाने लगी। क्या बलवान् के सम्मुख कोई ठहर सकता है ?

२६. अपूर्व विजय प्राप्त कर वह अपने देश आया। राजा का मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसे बहुत सम्मान दिया।

२७. उसके सुन्दर शरीर को शत्रु सेना के प्रहार से व्रण-पूरित देखकर राजा के मन में बहुत दु:ख हुआ।

२८. उसने वैद्यों को बुलाकर उसकी चिकित्सा कराई। किन्तु प्रचुर प्रयत्न करने पर भी व्रण ठीक नहीं हुए।

२९. उसकी पीड़ा प्रतिदिन बढ़ने लगी। लेकिन बंकचूल व्याकुल नहीं हुआ। वह उसे अपने कर्मों का फल समझ कर समभाव से सहन करने लगा।

३०. धर्मज्ञ व्यक्ति समागत सभी दु:खों को समभाव से सहन करता है। समभाव से उसके निश्चित ही कर्म निर्जरा होती है।

३१. अधर्मज्ञ व्यक्ति दु:खों के आने पर सदा विलाप करता है। इससे वह नवीन कर्मों का बंधन करता है। अत: दु:ख को समभाव से सहन करना चाहिए।

३२. उसकी वेदना को बढ़ती हुई देखकर राजा ने वैद्यों को उपालंभ दिया और कहा — इसे शीघ्र स्वस्थ करो।

३३. राजा के उपालम्भ को सुनकर वैद्यों ने कहा— राजन् ! हम आपके हृदय की वेदना को जानते हैं।

३४. लेकिन घाव बहुत गहरे हैं। अत: औषध कार्य नहीं करती है। अब एक उपाय है जिससे वह स्वस्थ हो सकता है।

३५. राजा ने विस्मित होकर पूछा— वह कौनसा उपाय है ? तब एक वैद्य ने आत्मविश्वास पूर्वक इस प्रकार कहा—

जइ इमेसु वणेसुं संपयं, भरेज्जा बलिउट्टाण[११] मंसं[१२] ।
वणा भरिउं णिच्छियं सक्का, ण दिस्सइ किर अवरो उवायो ॥३६॥

सोऊण सुविज्जस्स मुहाओ, णिअ-गयणासगं णं उवायं ।
सईअ तस्स णियमो चउत्थो, समागओ तुरिअं लवेइ सो ॥३७॥

इमाए ओसहीए णाइं, अहं कयावि पओगं काहं ।
अत्थि पुरिमं चिअ णियमबद्धो, कायलाण हं मंसभक्खणे ॥३८॥

इमं बंकचूलस्स भारइं, सुणिऊण सणेहं य रिवइवई ।
साहेइ बंकचूलं तयाणिं, सुअ ! ण दिस्सइ अण्णो उवायो ॥३९॥

णिरत्थया इयाणिं पयाया, समा सेट्ठाओ ओसहीओ ।
इमा एगा अत्थि अवसेसा, कायव्वो इमाअ हु पओगो ॥४०॥

जइ होहिइ जीअं सुरक्खियं, तया बहूण वयाण पालणं ।
काउं पक्कलो णरो जगम्मि, अजीओ किं करिउं पच्चलो ॥४१॥

सुणिऊण भूवस्स सरस्सइं, वज्जरेइ बंकचूलो तया ।
ताय ! एगम्मि दिणम्मि णूणं, णासेहिइ किर इणं सरीरं ॥४२॥

वयं रक्खंतो जइ विणासं, लहेइ अण्णो सेट्ठयरो किं ।
वयं तोडिअ रक्खेइ देहं, पयाइ मच्चो अहमं गइं य ॥४३॥

अओ वयं णाइं तोडिहामि, समागयम्मि पउरे वि कट्ठे ।
ण संपयं मे मणम्मि गिद्धी, अस्सिं सरीरम्मि अत्थि किंचि ॥४४॥

सोच्चा बंकचूलस्स वाणिं, णिवो मोहा य हूओ दुहिओ ।
चिंतेइ किं कुज्जा उवायं, मणेज्ज जेण अयं मे वत्तं ॥४५॥

इणं चिंतेंतो तस्स झाणे, समागओ एगो य उवायो ।
विज्जए अस्स अहुणा मित्ती, जिणदासेण समं य वहुत्ता[१३] ॥४६॥

जइ सो समागंतूणं अत्थ, एअं बुज्झेज्ज किर संपयं ।
मण्णेज्ज जइ अयं से वत्तं, तया होहिइ सहलो पयासो ॥४७॥

इमं चिंतिऊण सो भूवई, आगारेइ एगं स-दूयं ।
कहेइ तुं गच्छेज्ज संपयं, सालिग्गामम्मि य सयराहं ॥४८॥

---

(११) काकानाम् (पाइयलच्छी नाममाला—६७)। (१२) मांसम् (मांसादिष्वनुसारे— प्रा.व्या.८ ।१ ।७०)।
(१३) प्रभूता (प्रभूते वः—प्रा.व्या. ८ ।१ ।२३३)।

३६. यदि इन घावों में अभी कौवे का मांस भर दिया जाये तो ये भर सकते हैं। अन्य कोई उपाय दिखाई नहीं देता।

३७. वैद्य के मुख से अपने रोगनाशक इस उपाय को सुनकर उस (बंकचूल) को चौथे नियम की स्मृति हो गई। उसने तत्काल कहा—

३८. मैं कभी इस औषधि का प्रयोग नहीं कर सकता। मुझे पहले से ही कौवे के मांस खाने की प्रतिज्ञा है।

३९. बंकचूल की यह वाणी सुनकर राजा ने स्नेहपूर्वक उसे कहा- पुत्र ! दूसरा कोई उपाय दिखाई नहीं देता।

४०. सभी श्रेष्ठ औषधियां निरर्थक हो गई हैं। यही एक अवशिष्ट रही है। निश्चित ही तुम्हें इसका प्रयोग करना चाहिए।

४१. यदि जीवन सुरक्षित होगा तो मनुष्य अनेक नियमों का पालन कर सकता है। मृत व्यक्ति क्या कर सकता है ?

४२. राजा की बात सुनकर बंकचूल ने कहा- पिताजी ! यह शरीर तो एक दिन निश्चित ही नष्ट हो जायेगा।

४३. यदि व्रत की रक्षा करते हुए यह नष्ट हो जाता है तो इससे अन्य श्रेष्ठ क्या है ? जो व्यक्ति व्रत को तोड़कर शरीर की रक्षा करता है वह अधम गति में जाता है।

४४. अतः प्रचुर कष्ट आने पर भी मैं नियम को नही तोड़ूंगा। इस शरीर में अब मेरी कुछ भी आसक्ति नहीं है।

४५. बंकचूल की वाणी सुनकर राजा मोह के कारण दुःखी हुआ। उसने सोचा— क्या उपाय किया जाए जिससे यह मेरी बात मान ले।

४६. ऐसा चिन्तन करते हुए उसके ध्यान में एक उपाय आया कि इसकी जिनदास के साथ बहुत मित्रता है।

४७. यदि वह यहां आकर इसे अभी समझाए और यदि यह उसकी बात मान ले तो मेरा प्रयत्न सफल होगा।

४८. ऐसा सोचकर राजा ने अपने एक दूत को बुलाकर कहा— तुम अभी शीघ्र शालिग्राम जाओ।

तत्थ गंतूण तुं जिणदासं, दाऊण तस्स इणं य पत्तं ।
कहेज्जा आगारिओ भूवेण, बंकचूलो अत्थि अइलुक्को[१४] ॥४९ ॥

दुअं तत्थ गमिऊण य दूओ, दाऊण पत्तं समं कहेइ ।
सोऊण सो दूयस्स वयणा, मित्तस्स अइलुग्गस्स वत्तं ॥५० ॥

होऊण मणम्मि अइवाउलो, आगओ तह[१५] दुत्ति तेण समं ।
दट्ठूण मित्तस्स इमं ठिइं, पीला हियम्मि पउरा जाया ॥५१ ॥
(जुग्गं)

भासेइ भूवो तं तयाणिं, सव्वा ओसही हूआ मुहा ।
विज्जए एगा य अवसेसा, ताअ पओगं अयं ण कुणेइ ॥५२ ॥

कहेइ णाइं अहयं कयाइ, गहीयं णियमं तोडेहामि ।
परं वयाण पालणं मच्चो, जीओ पुणो वि चयेइ काउं ॥५३ ॥

होइ जया जीवियं विणट्ठं, पुणो को जीविउं य पच्चलो ।
अओ जीअस्स रक्खा पढमं, कायव्वा अत्थि कहणं मज्झ ॥५४ ॥

सोऊण णिवस्स गिरं कहेइ, तया जिणदासं बंकचूलो ।
मित्त ! इणं जीवणं भंगुरं, कयाइ णासं लहिउं सक्कं ॥५५ ॥

अओ अस्स जीवियट्ठं अहं, कयावि तोडिस्सं ण वयाइं ।
गहिअं वयं तुडेइ जो णरो, वच्चेइ सो अहमं गइं सइ ॥५६ ॥

णिहालिऊण से णं दिढत्तं, भासेइ भूहवं जिणदासो ।
जहिऊण णिव ! अण्णा ओसही, धम्म-साहिज्जं एअं देज्ज ॥५७ ॥

जया चइऊण इमं य देहं, वच्चेइ माणवो परलोगं ।
तया णवर[१६] धम्मो चिअ हुवेइ, तस्स सहयरो अवरो ण को वि ॥५८ ॥

सुणिऊण तस्स इमं भारइं, बंकचूलो तया जिणदासं ।
कहेइ मित्त ! जइ तुज्झ णेहो, विज्जए मे किंचि वि संपयं ॥५९ ॥

तया णे[१७] देज्ज धम्म-संबलं, वांछेमि अण्णं अहं ण किंचि ।
णिसम्म तस्स इमं सरस्सइं, जागरूओ जिणदासो तया ॥६० ॥

तस्स सम्मुहे करेइ पउरं, धम्मिय-वायावरणं सुहयं ।
लद्धूण तं सो बंकचूलो, मोयए हिअये णिअगे बहुं ॥६१ ॥
तीहिं विसेसगं

(१४) अतिरुग्णः (शक्त-मुक्त-दष्ट- रुग्ण- मृदुत्वे को वा—प्रा.व्या. ८ ।२ ।२ इति सूत्रेण लुक्को, लुग्गो द्वौ भवतः) । (१५) तत्र । (१६) णवर केवले (प्रा.व्या.– ८ ।२ ।१८७) । (१७) माम् ।

४९. वहां जाकर जिनदास को यह पत्र देकर कहना कि राजा ने तुम्हें बुलाया है। बंकचूल बहुत बीमार है।

५०-५१. दूत ने शीघ्र वहां जाकर जिनदास को पत्र देकर सब बात कह दी। दूत के मुख से मित्र की अतिरुग्णता की बात सुनकर वह मन में व्याकुल होकर शीघ्र उसके साथ वहां आया। मित्र की इस स्थिति को देखकर उसके हृदय में बहुत दु:ख हुआ।

५२. राजा ने उससे (जिनदास से) कहा- सभी औषधियां निष्फल हो गई। सिर्फ एक ही अवशिष्ट है। उसका यह प्रयोग नहीं करता।

५३. यह कहता है कि मै ग्रहण किए हुए नियम को नहीं तोडूंगा। लेकिन जीवित व्यक्ति ही व्रतों का पालन कर सकता है।

५४. यदि जीवन नष्ट हो जायेगा तो कौन पुन: जीवित कर सकता है ? अत: मेरा तो यही कहना है कि पहले जीवन की रक्षा करनी चाहिए।

५५. राजा की वाणी सुनकर बंकचूल ने जिनदास को कहा— मित्र ! यह जीवन नाशवान् है। कभी नष्ट हो सकता है।

५६. अत: इस जीवन के लिए मैं गृहीत नियम को नहीं तोडूंगा। जो व्यक्ति लिए हुए व्रत को तोड़ता है वह सदा निम्न गति में जाता है।

५७. उसकी यह दृढ़ता देखकर जिनदास ने राजा से कहा— राजन् ! अन्य औषधियां छोड़कर इसे धर्म की सहायता दें।

५८. जब मनुष्य इस शरीर को छोड़कर परलोक मे जाता है तब सिर्फ धर्म ही मनुष्य का साथी होता है, अन्य कोई नहीं।

५९, ६०, ६१. उसका यह कथन सुनकर बंकचूल ने जिनदास को कहा- मित्र ! यदि तुम्हारा मेरे प्रति थोड़ा भी स्नेह है तो मुझे धर्म का संबल दो। मैं अन्य कुछ नहीं चाहता। उसकी यह वाणी सुनकर जागरूक जिनदास ने उसके सम्मुख प्रचुर सुखद धार्मिक वातावरण बना दिया। उसको पाकर बंकचूल बहुत प्रसन्न हुआ।

पप्प धम्मियं वायावरणं, ओणेइ सो य विसयासत्तिं ।
दट्ठूण तस्स मरणं पासे, कारेइ अणसणं जिणदासो ॥६२ ॥

अणसणे आलोयणं काउं, बंकचूलो णिअ-कय-पावाण ।
कुव्वेइ णिअअत्तणो सुद्धिं, विणा अत्तसुद्धिं समं मुहा ॥६३ ॥

काऊण सव्व-भूएहिं सो य, खमावणयं मणेण तयाणिं ।
होऊण समाहीए लीणो, झाएइ संपयं णिअग-अप्पं ॥६४ ॥

अंते सो लहिऊणं मच्चुं, उप्पन्नो बारस-सुरालये ।
पवित्तभाववसा हु विचित्तो, पहावो अत्थि विमलभावाण ॥६५ ॥

वच्चेइ मइलभाव[१८] वसा किर, पसण्णमुणी णिरयपेरंतं ।
गच्छेइ सो विमलभाववसा, तुरिअं य सुरालय-पज्जंतं ॥६६ ॥

अओ रक्खेज्जा भाव- सुद्धिं, णाइं भावं मलिणं कुज्जा ।
मलिणभावो दुग्गइकारणं, पवित्तभावो सुगइकारणं ॥६७ ॥

इइ णवमो सग्गो समत्तो

इइ विमलमुणिणा विरइयं पज्जप्पबंधं बंकचूलचरियं समत्तं

(१८) मलिनम् (मलिलोभय ...... मइलावह..... पाइक्कं-प्रा.व्या. ८ ।२ ।१३८)

६२. धार्मिक वातावरण को पाकर उसने विषयासक्ति को दूर किया। अन्त में उसकी मृत्यु को समीप देखकर जिनदास ने उसे अनशन कराया।

६३. अनशन में बंकचूल ने अपने कृत पापों की आलोचना कर आत्मा को शुद्ध किया। बिना आत्मशुद्धि के सब व्यर्थ हैं।

६४. सब प्राणियों से हृदय से क्षमायाचना कर समाधि में लीन होकर वह प्रतिपल अपनी आत्मा का चिंतन करने लगा।

६५. अंत मैं मृत्यु को प्राप्त कर वह पवित्र भावों के कारण बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुआ। शुद्ध भावों का प्रभाव विचित्र है।

६६. मलिन भावना के कारण मुनि प्रसन्नचन्द्र नरक पर्यंत चले जाते हैं और फिर वे ही शुद्ध भावना से देवलोक तक चले जाते हैं।

६७. अत: भावों को शुद्ध रखना चाहिए। उन्हें मलिन नहीं करना चाहिए। मलिन विचार ही दुर्गति का कारण है और पवित्र विचार सद्गति का।

नवम सर्ग समाप्त

विमलमुनिविरचित पद्यप्रबंधबंकचूलचरित्र समाप्त

पएसीचरियं

कथावस्तु

एक बार श्रमण भगवान् महावीर का शिष्यों सहित आमलकल्पा नगरी में आगमन हुआ। जनता भगवान् के दर्शनार्थ गई। राजा श्रेणिक भी अपनी रानी सहित भगवान् के दर्शनार्थ गया। उस समय सुधर्मा सभा में देव परिवार सहित स्थित सूर्याभदेव ने अवधिज्ञान से भगवान् का आमलकल्पा नगरी में आगमन जाना। उसने वहीं से भगवान् को वंदन किया। तत्पश्चात् उसने सोचा- मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन करने चाहिए। वह देव परिकर सहित भगवान् के पास आया। भगवान् को वंदन कर उसने निम्नलिखित प्रश्न पूछे–

(१) मैं भवसिद्धिक हूं या अभवसिद्धिक

(२) मैं सम्यग् दृष्टि हूं या मिथ्यादृष्टि

(३) मैं अपरित्तसंसारी हूं या परित्तसंसारी

(४) मैं सुलभबोधि हूं या दुलर्भबोधि

(५) मैं आराधक हूं या विराधक

(६) मैं चरम हूं या अचरम

भगवान् ने उसके प्रश्नों के उत्तर दिये। तत्पश्चात् सूर्याभदेव ने कहा- मैं आपके साधुओं के सम्मुख बत्तीस प्रकार का नाटक दिखाना चाहता हूँ। भगवान् कुछ नहीं बाले। उसने दो-तीन बार अपनी बात दोहराई। भगवान् मौन रहे। तब 'मौनं सम्मतिलक्षणं' ऐसा सोचकर उसने नाटक दिखाया। उसके जाने के बाद गणधर गौतम ने भगवान् से पूछा- भंते ! यह सूर्याभदेव ! पूर्व भव में कौन था ? इसने किसके समीप आर्यधर्म का श्रवण किया था ? अथवा इसने क्या किया, क्या दिया, क्या खाया, क्या आचरण किया जिसके प्रभाव से यह देवर्द्धि प्राप्त की है ? तब भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव के पूर्वभव संबंधित वृत्तान्त बताते हुए राजा प्रदेशी के जीवन का वर्णन किया। उसे सुनकर गणधर गौतम ने पुन: पूछा- यह सूर्याभदेव देवभव संबंधित आयुष्य को पूर्ण कर कहां उत्पन्न होगा ? तब भगवान् ने उसके आगामी भव का वर्णन करते हुए कहा- यह देवलोक से च्यवन कर, महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा।

मंगलायरणं

काऊण[१] णिअगुरूणं, अणंतबलजुआणं य चलणेसुं ।
वंदणं सभत्तीए, रएमि हं पएसीचरिअं ॥१॥

लहिऊण साहुसंगं, अहम्मिअपुरिसा वि होंति धम्मिआ ।
णिदंसणं अस्स इणं, सिक्खप्पयं पएसिचरिअं ॥२॥

मंगलाचरण

१. मैं अनंतशक्ति संपन्न अपने गुरुओं के चरणों में भक्तिपूर्वक वंदन कर प्रदेशी - चरित्र की रचना करता हूँ ।

२. साधु- संगति को पाकर अधार्मिक व्यक्ति भी धार्मिक हो जाते हैं। शिक्षाप्रद प्रदेशी-चरित्र इसका निदर्शन है ।

(१) आर्याछंद

पढमो सग्गो

सइ[२-३] आमलकप्पाए, णयरीए य ससीसो समागओ ।
णर-सुर-पूइअपायो, अंतिमतित्थयरो य वीरो ॥१ ॥

सोऊण समागमणं, पहुणो मणुस्सा अहमहमिआए ।
समायांति वंदेउं, सलहेंति[४] णिअभागहेयं ॥२ ॥

सुणिआण समावयणं, तत्थट्ठो सेयणामो भूवई ।
णिअराणीए सद्धिं, आगमेइ विहुणो पासम्मि ॥३ ॥

बुज्झिअ ओहिणाणेण, आमलकप्पाए वीरागमणं ।
सुहम्मासहाअ ठिओ, वुंदारयपरियरेहिं[५] समं ॥४ ॥

सूरियाभणामसुरो, ओअरिऊण णिआसणा तयाणिं ।
वंदेइ य तत्थट्ठो, भगवं सभत्तिब्भरहियेण ॥५ ॥
(जुग्गं)

जाण जीवणं लोए, चाअमयं परोवयारपुण्णं य ।
कुणेइ को अण[६] तेसिं, पायारविंदेसु वंदणं ॥६ ॥
णमिऊण महावीरं, सूरियाभो इमं चिंतेइ मणे ।
गमिअ आमलकप्पाए, (मए) सक्खं वीरो वंदियव्वो ॥७ ॥
देवपरियरेण समं, सो आगमेइ आमलकप्पाए ।
चिट्ठेइ जत्थ वीरो, तत्थ समायाइ सयराहं[७] ॥८ ॥
सविहिं वंदेइ विहुं, पडिपुच्छेइ इमाइं पण्हाइं ।
भवसिद्धिओ किं अहं, अभवसिद्धिओ वा विज्जेमि ॥९ ॥
किं अहं सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी वा इयाणि भयवं ।
अपरित्तसंसारिओ, किं वा परित्तसंसारिओ ॥१० ॥
सुलहबोहिओ किं अहं, दुल्लहबोहिओ अहवा संपयं ।
आराहओ अहयं, किं वा विराहओ विज्जेमि ॥११ ॥

---

(२) आर्याछंद (३) सकृत्

(४) श्लाघन्ते (श्लाघः सलहः-प्रा.व्या. ८ ।४ ।८८) । (५) देव परकरैः (निवृत्तवृन्दारके वा-प्रा.व्या.८ ।१ ।१३२) ।

(६) अण णाइं नञर्थे (प्रा.व्या.८ ।२ ।१९०) । (७) शीघ्रम् (सयराहं नवरिं... पाइयलच्छी नाममाला१७) ।

प्रथम सर्ग

१. एक बार आमलकल्पा नगरी में चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर का शिष्यों सहित आगमन हुआ। वे देवता और मनुष्यों द्वारा पूजित थे।

२. प्रभु का आगमन सुनकर मनुष्य अहंपूर्विका उन्हें वंदन करने के लिए आते है और अपने भाग्य की सराहना (प्रशंसा) करते हैं।

३. उनका आगमन सुनकर राजा श्वेत अपनी रानी के साथ प्रभु के पास आया।

४-५. अवधिज्ञान से आमलकल्पा नगरी में प्रभु का आगमन जानकर देव परिवार सहित सुधर्मा सभा में स्थित सूर्याभ नामक देव ने अपने आसन से उतर कर वहीं से भगवान् को भक्तिपूर्वक वंदना की।

६. जिनका जीवन त्यागमय और परोपकारपूर्ण है उनके चरणों में कौन वंदन नहीं करता ?

७. भगवान महावीर को नमस्कार कर सूर्याभ देव ने मन में चिंतन किया कि मुझे आमलकल्पा नगरी में जाकर प्रभु को साक्षात् वंदन करना चाहिए।

८. वह देव परिकर सहित आमलकल्पा नगरी में जहाँ भगवान् महावीर ठहरे थे वहाँ शीघ्र आया।

९. उसने भगवान् को विधिपूर्वक वंदन किया और ये प्रश्न पूछे— क्या मैं भवसिद्धिक हूँ या अभवसिद्धिक ?

१०. क्या मैं सम्यग्दृष्टि हूँ या मिथ्यादृष्टि ? अपरित्तसंसारी हूँ या परित्त-संसारी ?

११. क्या मैं सुलभबोधि हूँ या दुलर्भबोधि ? आराधक हूँ या विराधक ?

चरिमो अचरिमो य किं, अणुकंपं काऊण चवेज्ज भवं ।
सुणिऊण पण्हाइं, सूरियाभस्स इमाणि तया ॥१२॥
पच्चुत्तरं य देंता, साहेंति[८] तयाणिं जगणाहा णं ।
भवसिद्धिओ तुं च्चेअ, णो अभवसिद्धिओ संपयं ॥१३॥
विज्जेसि सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी णो सूरियाभ ! तुं ।
परित्तसंसारिओ सि, **अण** य अपरित्तसंसारिओ ॥१४॥
तुवं सि सुलहबोहिओ, णाइं दुल्लहबोहिओ इयाणिं ।
विज्जेसि आराहओ, विराहओ णाइं संपयं ॥१५॥
अत्थि[९] हु संपइ चरिमो, णो अचरिमो य सूरियाभो ! तुमं ।
सुणिऊण णं पडिवयं, सूरियाभो होइ पंफुल्लो ॥१६॥
वंदिऊण सो वीरं, सभत्तिं णिवेयए तयाणिं णं ।
वम्फेमि[१०] अहं भगवं !, तुम्हाण समणाण सम्मुहे ॥१७॥
णिदंसिउं नट्टविहिं, दिव्वं बत्तीसत्ति बद्धं किर ।
देज्जा जइ णिद्देसं, तयाणिं अहयं दंसेज्जा ॥१८॥ (जुग्गं)
णिसम्म सूरियाभस्स, णं वयं वीरो ण किं वि चवेइ ।
तयाणिं पुणो वि य सो, णिवेयए णिअहिअयभावा ॥१९॥
तयावि भगवं णाइं, किं वि लवेइ तयाणि सूरियाभो ।
मोणं सम्मइचिन्धं[११], मुणिअ दंसिउमारभीअ नट्टं ॥२०॥
दट्ठुआण देविड्ढिं, से सूरियाभस्स इमं तया ।
पुच्छेइ महावीरं, वंदिऊण णं इंदभूई ॥२१॥
अयं सूरियाभसुरो, को अहेसि हु पुव्वभवम्मि भगवं ! ।
कस्स सगासे णेणं, णिसमिअं य आरिअं धम्मं ॥२२॥
अहवा तेण किं कयं, किं दिण्णं भुत्तं समायरियं य ।
जस्स पहावेण तेण, लद्धा इमिआ देवज्जुई ॥२३॥
सुणिऊण इणं पण्हं, णिअपमुहविणेअस्स गोयमस्स ।
साहेइ तया वीरो, सूरियाभस्स पुव्वजीअं ॥२४॥

इइ पढमो सग्गो समत्तो

---

(८) कथयन्ति (कथे र्वज्जर... प्रा. व्या. ८ ।४ ।२)। (९) असि (अत्थिस्त्यादिना- प्रा. व्या. ८ ।३ ।१४८ इति सूत्रेण सर्वपुरुष सर्ववचनेषु 'अत्थि' अपि भवति)।
(१०) कांक्षामि (कांक्षेराह.... ८ ।४ ।१९२)।
(११) चिन्हम् (चिन्हे न्धो वा - प्रा.व्या.८ ।२ ।५०)।

१२-१३. चरम हूँ या अचरम, आप अनुकंपा करके बतायें। सूर्याभ देव के ये प्रश्न सुनकर भगवान् ने उत्तर देते हुए कहा- तुम भवसिद्धिक हो, अभवसिद्धिक नहीं।

१४. तुम सम्यग्दृष्टि हो, मिथ्यादृष्टि नहीं। परित्तसंसारी हो, अपरित्तसंसारी नहीं।

१५. तुम सुलभबोधि हो, दुलर्भबोधि नहीं। आराधक हो, विराधक नहीं।

१६. तुम चरम हो, अचरम नहीं। यह प्रत्युत्तर सुनकर सूर्याभ देव प्रफुल्लित हुआ।

१७-१८. उसने भगवान् को वंदन कर भक्तिपूर्वक निवेदन किया-भगवन्! मैं आपके श्रमणों के सम्मुख बत्तीस प्रकार का दिव्य नाटक दिखाना चाहता हूँ। यदि आप निर्देश दें तो मैं दिखाऊं।

१९. सूर्याभ देव के इस वचन को सुनकर भगवान् महावीर कुछ नहीं बोले। तब उसने पुनः अपने मानसिक भावों को निवेदन किया।

२०. तब भी भगवान् कुछ नहीं बोले। तब 'मौनं सम्मतिलक्षणं' ऐसा जानकर सूर्याभ देव ने नाटक दिखाना प्रारंभ कर दिया।

२१. सूर्याभ देव की इस देवर्द्धि को देखकर गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर को वंदन कर यह पूछा—

२२-२३. भगवन्! यह सूर्याभदेव पूर्वभव में कौन था? किसके समीप इसने आर्य धर्म का श्रवण किया? अथवा इसने क्या किया, क्या दिया, क्या खाया, क्या आचरण किया जिसके प्रभाव से इसने यह देवर्द्धि प्राप्त की है?

२४. अपने प्रमुख शिष्य इंद्रभूति गौतम का यह प्रश्न सुनकर भगवान् महावीर ने सूर्याभ देव के पूर्व जीवन का वर्णन किया।

प्रथम सर्ग समाप्त

बीओ सग्गो

अहेसि[१-२] भारहे वासे, एगो जणवयों पुरा ।
केयइ-अद्धणामो हु, समिद्धो[३] त्थिमिओ[४] इर ॥१॥

तस्सिं जणवये आसि, सेयंबियाभिहा पुरी ।
अहेसि णिवई तत्थ, पएसीणामविस्सुओ ॥२॥

आसि अहम्मिओ सो य, पयापीलणकारओ ।
रयो णत्थियवायम्मि, साहूसंगविवज्जिओ ॥३॥

सारही चित्तणामो हु, हुवीअ तस्स धम्मिओ ।
पयाणं पच्चयट्ठाणो, रज्जधुराविचिंतओ ॥४॥

आहूय एगया तं य, साहेइ पएसी णिवो ।
णेऊण पाहुडं एअं, सावत्थिं णयरिं वय[५] ॥५॥

देज्जा पाहुडिअं एअं, मे मित्तस्स जियारिणो[६] ।
जो अत्थि णिवई तत्थ, पुच्छेज्जा कुसलं य तं ॥६॥
णिद्देसं पडिसोऊण, पट्ठाइ सारही तओ ।
आगच्छेइ सो दुत्ति, सावत्थिं णयरिं तया ॥७॥
रायसहाअ गंतूणं, पणमेइ णिवं तया ।
दाऊण पाहुडं सो य, पुच्छेइ कुसलं णिवं ॥८॥
घेत्तूण पाहुडं भूवो, चित्तं सक्कारिऊण य ।
णिअगपिअमित्तस्स, पुच्छेइ कुसलं तया ॥९॥
साहेइ णिवई चित्तं, कइवाह[७] दिणा तुमं ।
वसिऊण सुहं अत्थ, गच्छेज्जा स-पुरिं तओ ॥१०॥
भूवस्स कहणं चित्तो, मण्णिऊण वसेइ य ।
रायमग्गट्ठिअं ठाणं, देइ मणोहरं णिवो ॥११॥

---

(१) अनुष्टुप् छंद । (२) आसीत् ।
(३) समृद्धः- धन धान्यादि से परिपूर्ण । (४) स्तिमितः - स्वचक्र और परचक्र के उपद्रवों से रहित ।
(५) वज । (६) जितशत्रवे ।
(७) कतिपयाः (डाह वौ कतिपये-प्रा. व्या. ८ ।१ ।२५०) ।

द्वितीय सर्ग

१. प्राचीन काल में भारतवर्ष में केतकीअर्द्ध नामक एक समृद्ध (धन-धन्यादि से पूर्ण) और स्तिमित (स्वचक्र और परचक्र के उपद्रवों से रहित) जनपद था।

२. उस जनपद में श्वेताम्बिका नामक एक नगरी थी। प्रदेशी वहां का राजा था।

३. वह राजा अधार्मिक, प्रजा को पीडा देने वाला, नास्तिकवाद में रत तथा साधुओं की संगति नहीं करने वाला था।

४. उसके सारथि का नाम चित्र था। वह धार्मिक, प्रजा का विश्वासपात्र तथा राज्य की चिंता करने वाला था।

५. एक बार राजा प्रदेशी ने उसको बुलाकर कहा- इस भेंट को लेकर तुम श्रावस्ती नगरी जाओ।

६. मेरे मित्र जितशत्रु को, जो वहां का राजा है, उसे यह भेंट दे देना और उसे कुशल पूछना।

७. निर्देश स्वीकार कर सारथि वहां से रवाना हुआ। वह शीघ्र ही श्रावस्ती नगरी आ गया।

८. राजसभा में जाकर उसने राजा को प्रणाम किया और भेंट देकर राजा से कुशल पूछा।

९. भेंट ग्रहण कर राजा जितशत्रु ने चित्र का सत्कार किया और उससे अपने प्रिय मित्र के कुशल समाचार पूछे।

१०. राजा ने चित्र को कहा— तुम कुछ दिन यहां सुखपूर्वक रहकर फिर अपने नगर जाना।

११. राजा के कथन को स्वीकार कर चित्र वहीं ठहर गया। राजा ने उसे मार्गस्थित एक सुंदर स्थान दिया।

कइवाह दिणा वीआ, एगया तत्थ आगओ ।
नाणदंसणसंपण्णो, ओयंसी य जिइंदिओ ॥१२॥

तवचरित्तसंपण्णो, तेयंसी जणतारगो ।
जिअपरीसहो धीरो, चउणाणेण पुण्णओ ॥१३॥

चोद्दसपुव्वसंपण्णो, केसिणाममुणीवई ।
पंचसएहि साहूहिं, विणीएहिं समं तया ॥१४॥
(तीहिं विसेसगं)

साहूवईण सोऊण, आगमणं जणा तया ।
सव्वपावहरं णेसिं, दंसणं काउमाणसा ॥१५॥

अहमहमिआए य, पट्ठिआ स-गिहा दुअं ।
को अण ण्हाइ गंगाए, गिहंगणागयाअ य ॥१६॥ (जुग्गं)

रायपहेण गंताणं, दट्ठूण मणुयाण य ।
पुच्छेइ सारही चित्तो, विम्हयावण्णमाणसो ॥१७॥

कंचुइपुरिसं एगं, आगारेऊण सत्तरं ।
किं अज्ज निगमे अस्सिं, अत्थि को वि महूसवो ॥१८॥
अइच्छेंति[८] जओ मच्चा, णइपूरव्व संपयं ।
सुणेऊण वयं तस्स, साहेइ सो णरा तया ॥१९॥
(तीहिं विसेसगं)

णाइं महूसवो को वि, णयरे अज्ज विज्जए ।
अज्ज समागओ अत्थ, केसिणाममहामुणी ॥२०॥

ठाइ पुरीअ बाहिं सो, कोट्ठयणामचेइए ।
कुणेउं दंसणं तेसिं, जणा गमेंति संपयं ॥२१॥
सोऊण वयणं तस्स, चित्तो चिंतेइ माणसे ।
दंसणं जस्स काउं य, वच्चेंति पउरा णरा ॥२२॥
सो हुवेज्ज महप्पा हु, गंतव्वं ममए अओ ।
दंसणं तस्स काऊणं, धण्णं कुणेज्ज अप्पयं ॥२३॥(जुग्गं)
इत्थं विआरिऊणं सो, कोट्ठयणामचेइए ।
दंसणट्ठं अइच्छेइ, से महामुणिणो तया ॥२४॥

(८) गच्छन्ति (गमेरइच्छ.... प्रा.व्या. ८।४।१६२)

१२-१३-१४. कुछ दिन बीते। एक दिन ज्ञानदर्शनसंपन्न, ओजस्वी, जितेन्द्रिय, तप और चारित्र से संपन्न, तेजस्वी, जनतारक, परीषहजयी, चार ज्ञान से परिपूर्ण, चौदह पूर्वों से संपन्न केशी नामक आचार्य पाँच सौ शिष्यों सहित वहां आये।

१५-१६. आचार्य का आगमन सुनकर जनता उनके सर्वपापनाशक दर्शन की इच्छुक होकर अहंपूर्विका अपने घर से रवाना हुई। गृहांगन में आई हुई गंगा में कौन स्नान नहीं करता?

१७-१८-१९. राजमार्ग से जाते हुए मनुष्यों को देखकर विस्मित हुए सारथि चित्र ने एक कंचुकि पुरुष को बुलाकर पूछा- क्या नगर में आज कोई महोत्सव है? जिससे मनुष्य नदी के पूर की तरह अभी जा रहे हैं ? सारथि के वचन को सुनकर उसने कहा—

२०. आज नगर में कोई महोत्सव नही है। किंतु आज नगर में केशी नामक महामुनि आये हैं।

२१. वे नगर के बाहर कोष्ठक नामक चैत्य में ठहरे हैं। ये मनुष्य उनके दर्शन करने के लिए जा रहे हैं।

२२-२३. उसके वचन को सुनकर चित्र ने मन में सोचा—जिसके दर्शन के लिए बहुत मनुष्य जा रहे हैं निश्चित ही वह महान् व्यक्ति है। अत: मुझे भी जाना चाहिए और उसके दर्शन कर स्वयं को धन्य बनाना चाहिए।

२४. ऐसा विचार कर वह उस महामुनि के दर्शन करने के लिए कोष्ठक चैत्य में गया।

तत्थ गंतूण वंदेइ, तयाणिं तं महामुणिं ।
काऊण दंसणं तस्स, धण्णं मण्णइ अप्पयं ॥२५ ॥

पच्छा पावयणं सोउं, चिट्ठेइ सारही तहिं ।
देइ धम्मोवएसं य, तया केसी महामुणी ॥२६ ॥

सोऊण माणवा सव्वे, गया णिअगिहं तया ।
चित्तो तस्स य पासम्मि, आगंतूण णिवेयए ॥२७ ॥

हं अणगारधम्मं णो, पडिसोउं य पच्चलो[९] ।
अओ अगारधम्मं हं, पडिसुणेमि संपयं ॥२८ ॥

सोऊण तस्स वाणिं णं, साहेइ सो महामुणी ।
माइं[१०] सुहे विलंबं तं, कुणेज्ज इर संपइ ॥२९ ॥

घेत्तूण मुणिणो पासे, अणुव्वयाणि सारही ।
आगमेइ णिअट्ठाणे, पसण्णमाणसो तया ॥३० ॥

पालेइ दिढचित्तेण, सद्धापूरिअचेयसा ।
गहियाइं वयाइं सो, पमायं णो कुणेइ य ॥३१ ॥

कइवाह दिणा वीआ, तत्थट्ठिअस्स तस्स हु ।
एगया जियसत्तू तं, समाहूय चवेइ[११] णं ॥३२ ॥

णेऊण पाहुडं एअं, सेअंबियपुरिं वय ।
इमं य पाहुडं देज्जा, पएसिणिवइस्स य ॥३३ ॥

पुच्छेज्जा कुसलं सव्वं, साहेज्जा कुसलं य मे ।
कहेऊण इमं वाणिं, ससम्माणं विसज्जइ ॥३४ ॥

णेऊण पाहुडं चित्तो, आगमेइ णिअं पयं ।
सज्जीभूय तओ पच्छा, सावत्थिं पइ पट्ठिओ ॥३५ ॥

मियवणम्मि उज्जाणे, केसिसामिपये तया ।
आगमेऊण वंदेइ, णिवेयए इणं वयं ॥३६ ॥

---

(९) समर्थः (पक्का सहा.... पाइयलच्छी नाममाला-५२) ।
(१०) माइं मार्थे (प्रा. व्या. ८ ।२ ।१९१) । (११) कथयति ।

२५. वहां जाकर उसने उस महामुनि को वंदन किया। उसके दर्शन कर वह अपने को धन्य मानने लगा।

२६. तत्पश्चात् प्रवचन सुनने के लिए सारथि चित्र वहीं ठहर गया। केशी महामुनि ने धर्मोपदेश दिया ।

२७. प्रवचन सुनकर सभी मनुष्य अपने घर चले गये। तब चित्र ने समीप आकर महामुनि को निवेदन किया—

२८. मैं अनगार धर्म को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। अत: अभी अगार धर्म स्वीकार करता हूँ।

२९. उसकी वाणी को सुनकर उस महामुनि ने कहा- तुम शुभ कार्य में विलंब मत करो।

३०. मुनि के पास में अणुव्रतों को ग्रहण कर सारथि प्रसन्नमन से अपने स्थान पर आ गया।

३१. वह दृढचित्त तथा श्रद्धापूरित मन से गृहीत व्रतों का पालन करने लगा। वह प्रमाद नहीं करता था।

३२. वहीं रहते हुए उसके कई दिन बीत गये। एक दिन जितशत्रु राजा ने उसको बुलाकर कहा —

३३. तुम इस भेंट को लेकर श्वेताम्बिका नगरी जाओ और राजा प्रदेशी को यह भेंट दे दो।

३४. तुम राजा प्रदेशी को कुशल पूछना और मेरा कुशल समाचार उसे कहना। यह कहकर उसे ससम्मान विदा कर दिया।

३५. चित्र भेंट लेकर अपने स्थान पर आ गया। तत्पश्चात् वह सज्जित होकर श्रावस्ती की ओर रवाना हो गया।

३६. वह मृगवन उद्यान में केशी स्वामी के स्थान में आकर उन्हें वंदन किया और यह निवेदन किया—

संपयं अहं वच्चेमि, सावत्थिं णिगमं णिअं ।
आवच्चेज्जा भवं तत्थ, इणं णिवेयणं महं ॥३७ ॥

अत्थि दरिसणिज्जा सा, सावत्थी य मणोहरा ।
आगमेज्जा किवं किच्चा, इमिआ पत्थणा महं ॥३८ ॥

सुणेऊण वयं तस्स, केसी साहेइ किं वि णो ।
णिवेयए पुणो चित्तो, तया केसी चवेइ तं ॥३९ ॥

सावत्थी विज्जए चित्तो !, दंसणिज्जा मणोरमा ।
परं तुज्झ णिवो चित्तो !, पएसी त्थि अहम्मिओ ॥४० ॥

साहूसंगविहूणो[१२] सो, पयापीलणकारओ ।
अम्हाणं गमणं चित्तो !, वरं तत्थ तहेव णो ॥४१ ॥

जहा मणोरमे रण्णे, पुप्फफलमयम्मि य ।
भिलुंगापडिपुण्णे णो, जंतूणं गमणं वरं ॥४२ ॥(जुग्गं)

साहूणं गमणं तत्थ, जिणेहिं य पसंसिअं ।
णाण-दंसण-चारित्तं, वुड्ढिं[१३] जत्थ य वच्चइ ॥४३ ॥

सावत्थीणयरी तुज्झ, साहू-जुग्गा ण विज्जए ।
अम्हाणं गमणं तत्थ, णाइं वरं य संपयं ॥४४ ॥

सुणेऊण वयं तस्स, चित्तो णिवेयए य णं ।
अणेगे मणुआ भद्दा, सावत्थीएं वसेंति य ॥४५ ॥

वंदिहिन्ति भवन्तं ते, सक्कारिहिंति णिच्छिअं ।
देइस्संति जहाजुग्गं, ठाणं भत्तं भवाण य ॥४६ ॥

तया भूवेण किं कज्जं, भवता ननु विज्जए ।
आगमेज्जा अओ तत्थ, इणं णिवेयणं महं ॥४७ ॥
सुणेऊण वयं तस्स, सीकयं केसिसामिणा ।
लहेऊण मुअं चित्ते, चित्तो केसिं य वंदइ ॥४८ ॥
चवेइ तुरिअं तत्थ, समागमेज्ज सामि ! तं[१४] ।
चाययव्व विहीरेमि, भवन्तं तत्थ संपयं ॥४९ ॥

---

(१२) विहीनः (ऊर्हीन विहीने वा-प्रा.व्या. ८ ।१ ।१०३) । (१३) वुड्ढिम् (दग्ध-विदग्ध-वृद्धि- वृद्धे ढः- प्रा.व्या. ८ ।२ ।४०) । (१४) तं वाक्योपन्यासे ।(प्रा.व्या. ८ ।२ ।१७६) ।

३७. मैं अभी श्रावस्ती नगरी की ओर जा रहा हूँ। आप वहीं आये, यह मेरा निवेदन है।

३८. वह श्रावस्ती नगरी दर्शनीय और मनोहर है। कृपा कर वहां आये, यह मेरी प्रार्थना है।

३९. उसके वचन सुनकर केशी स्वामी कुछ नहीं बोले। चित्र ने पुनः निवेदन किया। तब केशी स्वामी ने उसको कहा—

४०. चित्र ! श्रावस्ती नगरी दर्शनीय और मनोरम है। लेकिन तुम्हारा राजा प्रदेशी अधार्मिक है।

४१-४२. वह साधु-संग से रहित है और प्रजा जनों को पीडित करने वाला है। वहां हमारा गमन उसी प्रकार उचित नहीं है जिस प्रकार शिकारी से परिपूर्ण पुष्प, फलयुत, मनोरम वन में पशुओं का जाना।

४३. जिनेश्वर देव ने वहीं साधुओं का गमन प्रशंसित माना है जहां ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि होती है।

४४. तुम्हारी श्रावस्ती नगरी साधुओं के योग्य नहीं है। अतः हमारा वहां जाना उचित नहीं है।

४५. केशी स्वामी के वचन सुनकर चित्र ने उनको निवेदन किया- श्रावस्ती नगरी में अनेक भद्र व्यक्ति रहते हैं।

४६ वे निश्चित ही आपको वंदन करेंगे, आपका सत्कार करेंगे और आपको यथायोग्य स्थान, भोजन आदि देंगे।

४७. तब आपको राजा से क्या प्रयोजन है ? अतः आप वहां आये, यह मेरा निवेदन है।

४८-४९. उसके कथन को सुनकर केशी स्वामी ने उसे स्वीकार कर लिया। मन में प्रसन्न होकर चित्र ने केशी स्वामी को वंदन किया और कहा— स्वामिन् ! शीघ्र वहां आये। मैं चातक की तरह वहां आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

णिवेऊण य सामीणं, वंदेऊण तयाणि तं ।
वच्चेइ सो य सावत्थिं, चित्तो पंफुल्लमाणसो ॥५० ॥
सावत्थीए वसित्ताणं, कइवाह दिणा तया ।
केसीसामी विहारं य, कुणेइ मुअचेयसा ॥५१ ॥
गामेसु विहरंतो य, सेयंबिअं पुरिं दुअं ।
आगमेइ ससीसो सो, केसी माणवतारगो ॥५२ ॥
समागंतूण उज्जाणे, सेयंबिआअ बाहिरं ।
णेऊण वारपालेण, अणुमइं ठिओ तहिं ॥५३ ॥
आगयं तं य दट्ठूण, तया दुवारपालगो ।
वंदेइ य नमंसेइ, भत्तिब्भरहिएण तं ॥५४ ॥
लद्धूण संथवं तेसिं, सो य पसण्णमाणसो ।
चित्तसारहिणो पासे, गंतूण से णिवेयए ॥५५ ॥
कंखीअ दंसणं जस्स, भवाण संपयं इह ।
सो इह आगओ सामी, केसीणामेण विस्सुओ ॥५६ ॥
सोच्चा दुवारपालेण, केसीसामिस्स आगइं ।
लद्धूण सारही मोअं, तक्खणं तत्थ आगओ ॥५७ ॥
वंदिऊण य भत्तीए, बोल्लेइ वयणं इणं ।
लद्धूण दंसणं तुज्झ, धण्णो म्हि संपयं अहं ॥५८ ॥
सोऊण केसिसामीण, आगमणं जणा तया ।
अहमहमिआए य, आगमेंति तहिं दुअं ॥५९ ॥
विसालं परिसं तं य, केसी माणवतारगो ।
पावयणं[१५] सुणावेइ, पावमलिणहारगं ॥६० ॥
पवयणं सुणेऊण, जणा गिहं तया गया ।
चित्तो तेसिं य पासम्मि, आगंतूण णिवेयए ॥६१ ॥
भूवो अहम्मिओ मज्झ, पएसीणामधारगो ।
जइ भवं य तं धम्मं, सुणावेज्ज इणं तया ॥६२ ॥
होहिइ पउरो लाहो, विस्सासो त्ति य माणसे ।
चित्तस्स वयणं सोच्चा, केसी इमं य साहइ ॥६३ ॥ (जुग्गं)

(१५) प्रवचनम् (घञ् वृद्धेर्वा प्रा.व्या. ८ ।१ ।६८) इति सूत्रेण पावयणं, पवयणं द्वौ भवतः ।

५०. केशी स्वामी को निवेदन कर और उन्हें वंदन कर चित्र प्रसन्नमन से श्वेताम्बिका नगरी चला गया।

५१. कुछ दिन श्रावस्ती में रहकर केशी स्वामी ने प्रसन्नमन से विहार कर दिया।

५२. ग्रामों में विहार करते हुए जनतारक केशी स्वामी शीघ्र ही शिष्यों सहित श्वेताम्बिका नगरी आये।

५३. वे श्वेताम्बिका नगरी के बाहर उद्यान में आकर द्वारपाल से आज्ञा लेकर वहां ठहर गये।

५४. उनको आया हुआ देखकर द्वारपाल ने उन्हें भक्तिपूर्वक वंदन, नमस्कार किया।

५५. उनका परिचय पाकर वह प्रसन्नमना चित्र सारथि के पास आया और निवेदन किया।

५६. आप जिसके दर्शन चाहते थे वे केशी नाम से प्रसिद्ध मुनि यहां आये है।

५७. द्वारपाल से केशी स्वामी का आगमन सुनकर चित्र प्रसन्न हो वहां शीघ्र आया।

५८. उसने भक्तिपूर्वक वंदन कर कहा— आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया हूँ।

५९. केशी स्वामी का आगमन सुनकर जनता अहंपूर्विका वहां शीघ्र आने लगी।

६०. जनतारक केशी स्वामी ने उस विशाल परिषद् को पापमलनाशक प्रवचन सुनाया।

६१. प्रवचन सुनकर मनुष्य अपने घर चले गये। चित्र ने उनके पास आकर निवेदन किया—

६२-६३. मेरा राजा प्रदेशी अधार्मिक है। यदि आप उसे यह धर्म सुनायें तो बहुत लाभ होगा— ऐसा मन में विश्वास है। चित्र का वचन सुनकर केशी स्वामी ने यह कहा—

चित्तो ! चऊहि ठाणेहिं, जीवा सोउं ण पक्कला ।
केवलिभासियं धम्मं, इइ जिणेहि साहिअं ॥६४ ॥

जो आरामगयं साहुं, उवस्सयगयं य वा ।
गोयरग्गयणिग्गंथं, ण वंदइ ण पुच्छइ ॥६५ ॥

दट्ठूण समणं जो य, आवरित्ताण अप्पगं ।
गमेइ अण्णमग्गेण, धम्मं सोउं ण पच्चलो ॥६६ ॥(जुग्गं)

पएसीभूवई तुज्झ, साहूण सविहं वि णो ।
आगमेइ ण वंदेइ, कहं धम्मं सुणेहिइ ॥६७ ॥

केसीसामीण सोऊण, इणं य वयणं तया ।
चित्तो णिवेयए इत्थं, भवाण सविहे तया ॥६८ ॥

आणेउं तं कुणेहामि, पयत्तं बहुलं अहं ।
जइ भवाण अब्भासं, आगमेहिइ सो तया ॥६९ ॥

सुणावेहिइ किं धम्मं, केवलिभासियं भवं ।
चित्तस्स वयणं सोच्चा, केसीसामी चवेइ णं ॥७० ॥
(तीहिं विसेसगं)

दव्वं खेत्तं य कालं य, भावं दट्ठूण हं तया ।
सुणाविस्सं सुधम्मं तं, चित्तो ! णाइं य संसओ ॥७१ ॥

केसीसामिस्स सोऊण, चित्तो इणं वयं तया ।
वंदिऊण णिअं ठाणं, गओ पंफुल्लमाणसो ॥७२ ॥

बीओ सग्गो समत्तो

६४. चित्र ! चार कारणों से जीव केवलिभाषित धर्म सुनने में समर्थ नहीं है— ऐसा जिनेश्वर देवों ने कहा है ।

६५-६६. जो आरामगत (उद्यान में आये हुए), उपाश्रय गत और गोचरी के लिए गये हुए श्रमण को न वंदन करता है, न पूछता है तथा जो श्रमण को देखकर अपने को छिपाकर अन्य मार्ग से जाता है, वह धर्म सुनने में समर्थ नहीं है ।

६७. तुम्हारा राजा प्रदेशी साधुओं के पास न आता है, न वंदन करता है तब धर्म कैसे सुनेगा ?

६८-६९-७०. केशी स्वामी के इस वचन को सुनकर चित्र सारथि ने निवेदन किया— मैं आपके पास उसे लाने के लिए बहुत प्रयत्न करुंगा । यदि वह आपके पास आये तब क्या आप उसे केवलिभाषित धर्म सुनायेंगे ? चित्र के वचन सुनकर केशी स्वामी ने यह कहा—

७१. चित्र ! मैं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखकर उसे धर्म सुनाऊंगा, इसमें संशय नहीं है ।

७२. केशी स्वामी के इस वचन को सुनकर चित्र वंदन कर प्रसन्नमना अपने स्थान पर आ गया ।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तइओ सग्गो

भूवो[1] जहा होइ कुमग्गगामी, तया पयाणं य दुहं य देइ ।
भूवो जहा होइ सुमग्गगामी, तया पयाणं य सुहं य देइ ॥१॥

भूवो सया धम्मरयो हुवेज्जा, कहंति इत्थं विबुहा मणुस्सा ।
काउं पएसिं णिवइं सुधम्मिं, कुणेइ चेट्ठं य अओ य चित्तो ॥२॥

साहेइ आगम्म णिवस्स पासे, उवाणये संपइ आगया य ।
चत्तारि कंबोअया य आसा, कुणेज्ज तेसिं य भवं परिक्खं ॥३॥

चित्तस्स इत्थं वयणं णिसम्म, कहेइ भूवो तुरगा रहम्मि ।
णेऊण सिग्घं इह आगमेज्जा, वएज्ज[2] अण्णत्थ तओ य पच्छा ॥४॥

सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, तयाणि चित्तो गमिऊण झत्ति ।
आणेइ आसा य रहम्मि जुत्ता, णिवस्स पासम्मि चवेइ गंतुं ॥५॥

भूवो तयाणिं हुविऊण दुत्ति, विहूसियंगो इर तेण सद्धिं ।
ठाऊण तस्सिं य रहे गमेइ, णिअस्स दंगस्स तयाणि बाहिं ॥६॥

सीमाअ दूरं पउरं गया ते, जया तयाणिं णिवई य तंतो ।
होऊण चित्तं पिसुणेइ इत्थं, कुणेज्ज कुत्थावि दुयं विसामं ॥७॥

सोऊण वाणिं णिवइस्स चित्तो, रहं परावत्तिअ आगमेइ ।
भूवस्स उज्जाणमणोरमम्मि, मिअंकिए झत्ति वणम्मि सो य ॥८॥

ठाऊण बाहिं य रहं य तस्स, णिवेयए णं णिवइस्स चित्तो ।
पुप्फोववेयं इणमत्थि अम्हं, णिवो ! वणं भो ! हु मियाइणामं ॥९॥

वीसाममत्थेव भवं कुणित्ता, कुणेउ दूरं य तणूअ खेयं ।
अत्थेव वाहाण[3] समं समत्थं, हुवेज्ज दूरं ति य भावणा मे ॥१०॥

सोच्चाण चित्तस्स इमं य वाणिं, णिवो तयाणिं उररीकुणेइ ।
हेट्ठं रहा ओअरिऊण सो य, समं य ओणेइ णिअं हयाणं ॥११॥

भूवस्स दिट्ठिं य तया पडेइ, वणे ठिआण मुणीण उब्भं ।
चिंतेइ चित्तम्मि इमे जडा के, कुणेंति किं संपइ अत्थ कज्जं ॥१२॥

---

(१) उपजाति छंद (२) व्रजेत् (३) अश्वानाम्

तृतीय सर्ग

१. राजा जब कुमार्गमागी होता है तब वह प्रजा को दु:ख देता है । राजा जब सत्पथगामी होता है तब प्रजा को सुख देता है ।

२. राजा को सदा धर्मरत होना चाहिए— ऐसा ज्ञानियों ने कहा है । अत: राजा प्रदेशी को धार्मिक बनाने के लिए चित्र चेष्टा करने लगा ।

३. उसने राजा के पास आकर कहा— भेंट में चार कंबोजीय घोड़े आये हुए हैं । आप उनकी परीक्षा करें ।

४. चित्र का वचन सुनकर राजा ने कहा– घोड़ों को रथ में जुता कर शीघ्र यहाँ आओ । तत्पश्चात् अन्यत्र जाना ।

५. राजा की यह वाणी सुनकर चित्र जाकर के शीघ्र रथ में जुटे हुए घोड़ों को राजा के पास लाया और चलने के लिए कहा ।

६. राजा शीघ्र ही विभूषित होकर उसके साथ रथ में बैठकर अपने नगर के बाहर गया ।

७. जब वे सीमा से बहुत दूर चले गये तब राजा ने क्लान्त होकर चित्र को कहा— शीघ्र कहीं भी विश्राम करो ।

८. राजा की वाणी सुनकर चित्र रथ को घुमा कर राजा के मनोरम उद्यान वाले मृगवन में आता है ।

९. रथ को उसके बाहर ठहरा कर चित्र ने राजा से निवेदन किया– राजन् ! यह हमारा पुष्पित मृगवन है ।

१०. आप यहीं ही विश्राम करें और शीघ्र ही शरीर की खिन्नता को दूर करें । यहीं ही घोड़ों की क्लान्ति दूर हो- यही मेरी भावना है ।

११. चित्र की यह वाणी सुनकर राजा ने उसे स्वीकार कर लिया । वह रथ से नीचे उतर कर अपना और घोड़ों का श्रम (क्लान्ति) दूर करने लगा ।

१२. तब राजा की दृष्टि वन में स्थित मुनियों के ऊपर पड़ी । वह मन में सोचने लगा– ये जड़ कौन है ? यहाँ क्या कार्य करते है ?

पुच्छेइ चित्तं णिवई सचित्तं[४], जडा इमे के इहइं करेंति।
साहेइ चित्तो वसुहावइं य, इमे मुणी णाणमया य संति ॥१३॥
मण्णेंति जीवं य सरीरभिन्नं, सुरालयं ते णिरयालयं य ।
सोऊण भूवो य इमं य वत्तं, णिअस्स सिद्धंतविलोमरूवं ॥१४॥
साहेइ चित्तं सविहं य तेसिं, गमेज्ज चच्चं कुणिहामि तेण।
जीवो कहिं दिस्सइ कायभिन्ने, सुरालयो णो णिरयं य णाइं ॥१५॥
णेऊण भूवं य समागमेइ, तयाणि चित्तो इर केसिपासे ।
पुच्छेइ केसिं णिवई य जीवं, सरीरभिन्नं य मुणेसि किं तुं ॥१६॥
सोऊण भूवस्स इणं य पण्हं, कहेइ केसी विणयं विणा तुं ।
पुच्छेइ पण्हं य अओ य तुज्झ, ण विज्जए पुच्छणजुग्गया य ॥१७॥
दट्ठूण अम्हं हिअयम्मि तुज्झं, समागयं किं णणु चिंतणं णं ।
के संति मूढा य जडा इमे य, कुणेंति खाएंति इहं य किं य ॥१८॥
सोऊण इत्थं णिअगुत्तभावा, तयाणि साहेइ णिवो पएसी ।
मज्झं विआरा य कहं य णाया, तुमाइ चित्तं हिअयम्मि मज्झ ॥१९॥
किं किं वि णाणं य विसिट्ठरूवं, तुहं समीवं अहुणा य अत्थि ।
मज्झं य भावा य सुगुत्तरूवा, जओ य णाया तुमए इयाणिं ॥२०॥
सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, कहेइ केसी य विसिट्ठणाणी ।
मज्झं समीवे चउरो य णाणा, मई सुयोही मणपज्जवो य ॥२१॥
सोऊण भूवो पिसुणेइ केसिं, तणू य अप्पाउ य अत्थि भिन्ना ।
इत्थं भयं किं य भवाण अत्थि, समत्थि[५] चे मज्झ सुणेज्ज वत्तं ॥२२॥
मे अज्जए आसि अहम्मिओ य, पयाण दाही[६] सययं दुहं सो ।
लद्धूण कालं णिरयं गओ सो, मयाणुरूवं य भवाण इण्हिं ॥२३॥
कंतो अहं तस्स सया य आसि, इहं समागम्म कहेज्ज इत्थं ।
पावं कडं हन्दि बहुं ममाइ, अओ गओ हं णिरयं इयाणिं ॥२४॥
पावं तुमं णत्तुअ ! णो कुणेज्जा, तयाणि मण्णेज्ज मयं भवाणं ।
णाइं परं अत्थ समागओ सो, अओ विआरं सुदिढं य मज्झं ॥२५॥
अप्पा सरीराउ ण अत्थि भिन्नो, कहेंति भिन्नं विलसंति मूढा ।
सोऊण भूवस्स इणं विआरं, चवेइ केसी य विबोहिउं णं ॥२६॥
(तीहिं विसेसगं)

(४) साश्चर्यम् (५) समस्ति (६) अदात्

१३. राजा ने विस्मयपूर्वक चित्र को पूछा– ये जड़ कौन हैं ? यहाँ क्या करते हैं ? चित्र ने कहा- ये मुनि ज्ञानसंपन्न हैं।

१४-१५. ये जीव को शरीर से भिन्न मानते हैं। ये स्वर्ग और नरक को भी मानते हैं। अपने सिद्धान्त के प्रतिकूल इस बात को सुनकर राजा ने चित्र को कहा– उनके पास चलो। उनसे चर्चा करुंगा। जीव शरीर से भिन्न कहाँ, कैसे दिखाई देता है ? स्वर्ग और नरक भी नहीं हैं।

१६. राजा को लेकर चित्र केशी स्वामी के पास आया। राजा ने केशी स्वामी से पूछा— क्या आप जीव को शरीर से भिन्न मानते हैं ?

१७. राजा का यह प्रश्न सुनकर केशी स्वामी ने कहा– तुम विनय किये बिना पूछते हो। अतः तुम्हारे में पूछने की योग्यता नहीं है।

१८. हमें देखकर क्या तुम्हारे मन में यह चिंतन नहीं आया कि ये जड़, मूढ कौन हैं ? यहाँ क्या करते हैं, क्या खाते हैं ?

१९. इस प्रकार अपने गुप्त भावों को सुनकर राजा प्रदेशी ने कहा– आपने मेरे विचार कैसे जान लिये ?

२०. क्या आपके पास अभी कोई विशिष्ट ज्ञान है जिससे आपने मेरे सुगुप्त विचारों को जान लिया ?

२१ राजा की इस वाणी सुनकर विशिष्टज्ञानी केशी स्वामी ने कहा– मेरे पास चार ज्ञान हैं– मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्यव।

२२ यह सुनकर राजा ने केशी स्वामी को कहा— क्या आपका यह मत है कि शरीर आत्मा से भिन्न है ? यदि है तो मेरी बात सुने।

२३ मेरा दादा अधार्मिक था। वह प्रजा को सदा दुःख देता था। आपके मतानुसार वह मर कर अभी नरक गया है।

२४-२५-२६ मैं सदा उसका प्रिय था। यदि वह यहां आकर इस प्रकार कहें- मैंने बहुत पाप किये थे अतः अभी नरक गया हूँ। पौत्र ! तुम पाप मत करना। तब मैं आपके मत को मान लूं। किंतु वह यहां नहीं आया, अतः मेरा विचार सुदृढ़ है कि आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है। जो भिन्न कहते हैं वे मूढ हैं। राजा के इस विचार को सुनकर प्रतिबोध देने के लिए केशी स्वामी ने यह कहा—

तुज्झं य राणीअ समं इयाणिं, भुंजेज्ज भोगा मणुओ य को वि ।
डंडं तया दाहिसि किं तुमं ते, लवेइ भूवो सुणिऊण णं य ॥२७॥

भुंजेइ भोगा मणुओ य जो य, महं य राणीअ समं इयाणिं ।
हत्थाणि पायाणि य छिंदिऊण, दुयं य सूलीअ य तं वलित्ता ॥२८॥

जीवेण हीणं कुणिहामि तं य, परो य डंडो अण अत्थि को वि ।
डंडेज्ज भूवो य कुकम्मकारिं, पया लहेज्जा य जओ य सिक्खं ॥२९॥
(जुग्गं)

सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, कहेइ केसी समणो तयाणिं ।
हे राय! सो तुं जइ णं लवेज्जा, महं य देज्जा समयं य किंचि ॥३०॥
गंतूण गेहम्मि जओ य दुत्ति, चवेमि इत्थं णिअगा मणुस्सा ।
कम्मं कडं हा! ममए य इत्थं, जओ णिवेणं इर डंडिओ हं ॥३१॥

एआरिसं णो य कयाइ कम्मं, कुणेज्ज तुब्भे इइ मंतणा मे ।
किं तं तुमं देसि तयाणि कालं, णिअं य गेहं गमिउं य भूव! ॥३२॥

सोच्चाण केसिस्स इमं य वाणिं, कहेइ भूवो अहयं कयाइ ।
दाहं तयाणिं समयं ण किंचि, गिहं य गंतुं णिअगं य तं य ॥३३॥

तेणं य मंतू विहिओ य मज्झ, स दंडणिज्जो य अओ य अत्थि ।
कायव्वमेयं पढमं णिवस्स, पदेज्ज पावीण सया य डंडं ॥३४॥

भूवस्स इत्थं वयणं णिसम्म, चवेइ केसी पडिबोहमाणो ।
लट्ठो सया आसि स-पिआमहस्स, तुमं य णूणं अण का वि संका ॥३५॥

लद्धूण मच्चुं णिरयं गओ सो, मयाणुरूवं अहुणा य अम्हं ।
वम्फेइ सो आगमिउं य अत्थ, परं ण सो आगमिउं समत्थो ॥३६॥

णेऊण चत्तारि य कारणाइं, ण णारओ[७] अत्थ समागमेइ ।
दट्ठूण पीलं इर णारयस्स, दुहं य तत्थट्ठसुरेहि पप्प ॥३७॥

कम्माण णो दुग्गइरूवगाण[८], हुवेइ णासो इर जाव तस्स ।
णो आउसो से णरयस्स जाव, खयो पएसी! य हुवेइ ताव ॥३८॥

---

(७) नारक:
(८) नरकरूपकानाम्

२७. कोई मनुष्य तुम्हारी रानी के साथ भोग भोगें तो तुम उसे क्या दंड दोगे ? यह सुनकर राजा ने कहा—

२८-२९. जो मेरी रानी के साथ अभी भोग भोगे तो मैं उसके हाथ, पैर को काट कर, शूली पर चढ़ाकर उसे जीव शून्य कर दूंगा। दूसरा कोई भी दंड नहीं है। राजा को कुकर्म करने वालों को दंड देना चाहिए जिससे प्रजा शिक्षा प्राप्त करें।

३०. राजा की वाणी सुनकर केशी श्रमण ने कहा— राजन् ! यदि वह तुम्हें कहे, मुझे कुछ समय दें।

३१. जिससे मैं घर जाकर शीघ्र ही अपने स्वजनों को यह कह दूं कि मैंने इस प्रकार का कार्य किया है जिससे राजा ने मुझे दंडित किया है।

३२. तुम लोग ऐसा कार्य कभी नहीं करना। यह मेरी मंत्रणा है। राजन् ! क्या तुम उसे घर जाने के लिए समय दोगे ?

३३. केशी स्वामी की वाणी सुनकर राजा ने कहा— मैं कभी भी उसे अपने घर जाने के लिए समय नहीं दूंगा।

३४. उसने मेरा अपराध किया है अतः वह दंडनीय है। राजा का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह पापी को सदा दंड दें।

३५. राजा का वचन सुनकर प्रतिबोध देते हुए केशी स्वामी ने कहा— तुम अपने पितामह के प्रिय थे इसमें कोई भी शंका नहीं है।

३६. हमारे मतानुसार वह मृत्यु को प्राप्त कर नरक गया है। वह यहां आना चाहता है पर आने के लिए समर्थ नहीं है।

३७-३८. चार कारणों से नारकी जीव यहां नहीं आता है— (१) नारकी जीवों की पीड़ा को देखकर (२) तत्रस्थ देवों (परमाधार्मिकों) द्वारा दुःख पाने पर (३) जब तक उसके नरकगतिरूप कर्मों का नाश नहीं होता (४) जब तक नरकायुष्य क्षय नहीं होता।

सोऊण केसिस्स य जुत्तिपुव्वं, वयं तयाणिं णिवई कहेइ ।
णेऊण हेऊणि इमे परेआ[९], ण अत्थ चे आगमिउं समत्था ॥३९॥

तयाणि वत्तं अवरं सुणेज्जा, जओ मयं सिज्झइ मज्झ सम्मं ।
मज्झं सया आसि पिआमही य, सुधम्मलीणा मइ णेहपुण्णा ॥४०॥

कालं लहित्ताण दिवं गया सा, मयाणुरूवेण भवाण दाणिं ।
आगम्म सा अत्थ कहेज्ज मं चे, सुधम्मलीणो हुव णत्तुओ ! तुं ॥४१॥

धम्मो य ताणं मणुआण अत्थि, लहेइ धम्मी सुगइं य अत्थ ।
धम्मप्पहावेण मए पलद्धो, सुरालयो संपइ पोत्त ! सक्खं ॥४२॥

आराहणिज्जो तुमए वि धम्मो, महं इमा अत्थि य पेरणा य ।
वीओ य कालो पउरो य ताए, मइं गयाए ण परं समाआ ॥४३॥

जाओ दढो मज्झ अओ विआरो, तणूअ अत्ता अण अत्थ भिन्नो ।
सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, कहेइ केसी पडिबोहमाणो ॥४४॥

देवालये तं य गमेज्ज भूव !, कयाइ सज्जो हुविऊण झत्ति ।
एगो मणुस्सो पिसुणेज्ज इत्थं, पुरीसगेहम्मि ठिओ तुमं य ॥४५॥

पासम्मि मज्झं सइ[१०] आगमेज्जा, तुमं य चिट्ठेज्ज य किंचि कालं ।
किं तुं तया चिट्ठिहिसे य तत्थ, चवेइ भूवो अण हं कयाइ ॥४६॥
(जुग्गं)

पुच्छेइ केसी अण जाणहेउं, कहेइ भूवो मलिणं य ठाणं ।
सोच्चाण भूवस्स इमं य वाणिं, चवेइ केसी पडिबोहमाणो ॥४७॥

मच्चुं लहेऊण पिआमही ते, दिवं गया मज्झ मयाणुरूवं ।
णेऊण चत्तारि य कारणाइं, ण पच्चलो आगमिउं सुपव्वो ॥४८॥

बीयाणि ताइं य इमाणि संति, तुमं सुणेज्जा अवहाणचित्तो ।
होऊण गिद्धो तिअसाण भोगे, सुरो तयाणिं णवजायगो य ॥४९॥

वम्फेइ णाइं मणुआण भोगा, अओ ण सो अत्थ समागमेइ ।
गिद्धो जया होइ सुराण भोगे, सुरो णवीणो य तयाणि तस्स ॥५०॥

णेहो मणुस्सा पइ होइ णट्ठो, अओ ण सो अत्थ समागमेइ ।
देवाण भोगे हुविऊण गिद्धो, सुरो तयाणिं णवजायगो य ॥५१॥

---

(९) नारकाः (१०) सकृत्

३९-४०. केशी स्वामी के युक्तिपूर्वक वचन को सुनकर राजा ने कहा- यदि इन कारणों को लेकर नारकी यहां आने के लिए समर्थ नहीं है तब मेरी दूसरी बात सुने जिससे मेरा मत अच्छी तरह सिद्ध होगा। मेरी दादी सदा धर्म में लीन रहती थी। वह मेरे प्रति स्नेहिल थी।

४१. आपके मतानुसार वह मर कर देवलोक गई है। यदि वह आकर मुझे कहे— पौत्र ! तुम धर्मलीन बनो।

४२. धर्म मनुष्यों का त्राण है। धर्मी व्यक्ति सुगति को प्राप्त करता है। धर्म के प्रभाव से मैंने साक्षात् देवलोक को प्राप्त किया है।

४३. तुम भी धर्म की आराधना करो, यह मेरी प्रेरणा है। उसको मृत्यु प्राप्त हुए बहुत समय बीत गया लेकिन वह आई नहीं।

४४. अत: मेरा विचार दृढ हो गया कि शरीर से आत्मा भिन्न नहीं है। राजा की यह वाणी सुनकर केशी स्वामी ने प्रतिबोध देते हुए कहा—

४५. राजन् ! कभी तुम सज्जित होकर मन्दिर जाओ। तब शौचालय में स्थित एक व्यक्ति तुम्हें इस प्रकार कहे—

४६. एक बार मेरे पास में आओ और कुछ समय ठहरो। क्या तुम वहां ठहरोगे ? राजाने कहा — कभी नहीं।

४७. केशी स्वामी ने नहीं जाने का कारण पूछा । तब राजा ने कहा— वह स्थान अपवित्र है। राजा की वाणी सुनकर प्रतिबोध देते हुए केशी स्वामी ने कहा—

४८. मेरे मतानुसार तुम्हारी दादी मृत्यु को प्राप्त कर स्वर्ग गई है। चार कारणों को लेकर देव यहां आने के लिए समर्थ नहीं हैं।

४९-५४. तुम सावधान होकर इन कारणों को सुनो —(१) नवजात देव दैविक भोगों में आसक्त होकर मनुष्य के भोगों को नहीं चाहता है। अत: वह यहां नहीं आता है। (२) नवजात देव जब दैविक भोगों में आसक्त हो जाता है तब उनका मनुष्यों के प्रति स्नेह नष्ट हो जाता है। अत: वह यहां नहीं आता है। (३) नवजात देव दैविकभोगों में गृद्ध होकर मुहूर्त्त बाद यहां आने का चिंतन करता है पर आने में समर्थ नहीं होता है। उतने काल में उसके सभी प्रियजन मृत्यु को प्राप्त हो जाते है अत: वह यहां आना नहीं चाहता। क्योंकि बिना कारण के कार्य नहीं होता। (४) नवजात देव दैविक भोगों में जब गृद्ध हो जाता है तब वह मनुष्य लोक से कुत्सित गंध का अनुभव करता है। राजन् ! इन चार कारणों से देव यहां आने के लिए समर्थ नहीं है।

चिंतेइ सो आगमिउं य अत्थ, मुहुत्तपच्छा ण परं समत्था ।
तित्तिअकालम्मि पिआ मणुस्सा, गमेंति मच्चुं इर तस्स सव्वे ॥५२॥

णो होइ आगंतुमणो इहं सो, विणा य बीयं ण हुवेइ कज्जं ।
गिद्धो जया होइ सुराण भोगे, सुरो तयाणिं णवजायगो य ॥५३॥
गंधं तयाणिं अणुहोइ सो य, मणुस्सलोएण बहुं य कुच्छियं ।
णेऊण बीयाणि इमाणि राय!, सुरो इहं आगमिउं ण सक्को ॥५४॥
(छहिविसेसगं)

मिच्छा अओ णो ममए विआरो, तणूअ जीवो इर अत्थि भिन्नो ।
सोऊण केसिस्स इमं य वत्तं, पुणो वि इत्थं णिवई कहेइ ॥५५॥

हं एगया रायसहाअ आसि, अणेगमच्चेहि समं ठिओ हु ।
णेऊण एगं य तयाणि थेणं, समागओ मे पुररक्खगो य ॥५६॥
दट्ठूण मंतुं पउरं य तस्स, मए तया जीविअमेव तं य ।
एगम्मि कुंडम्मि य पाडिऊण, कयं मुहं से पिहियं य झत्ति ॥५७॥
काऊण बद्धा विवरा य तस्स, अओमयेणं य रसेण तत्थ ।
मच्चा अणेगे मइ ठाविऊण, गओ णिये हं णिवमंदिरम्मि ॥५८॥
वीआ अणेगे दिवसा तयाणिं, पुणो अहं तत्थ समागओ य ।
उग्घाडिओ मे[10] य जया य कुंडो, मयो पलद्धो य तयाणि दस्सू ॥५९॥
परं ण कुंडस्स य किं वि छिद्दं, समागयं दिट्ठिपहम्मि मज्झ ।
जीवो सरीरा जइ होज्ज भिन्नो, तयाणि बाहिं गमणे य तस्स ॥६०॥
कुंडस्स णूणं विवरं य होज्जा, परं ण हूअं णिहालियं मे ।
जीवो सरीरा अण अत्थि भिन्नो, इणं मयं मे सुदिढं पयायं ॥६१॥
(जुग्गं)

सोऊण इत्थं वयणं णिवस्स, कहेइ केसी समणो य तं णं ।
दिट्ठं तए कूडगिहं य किं य, णिवो तया 'आम'[11] य वज्जरेइ ॥६२॥
केसी तयाणिं पडिबोहमाणो, चवेइ भूवं य इमं य वाणिं ।
ठाऊण मच्चो जइ कूडगेहे, सुगुत्तवारे य णिच्छिड्डगे[12] य ॥६३॥
वाएइ भेरिं य तयाणि बाहिं, गमेइ सद्दं किर तस्स किं य ।
सोऊण केसिस्स इमं वयं य, कहेइ भूवो य गमेइ बाहिं ॥६४॥
(जुग्गं)

(१०) मया । (११) आम अभ्युपगमे (प्रा. ८।२।१७७)। (१२) निश्छिद्रके ।

५५. अतः शरीर से जीव भिन्न है यह मेरा विचार मिथ्या नहीं है। केशी स्वामी की यह बात सुनकर राजा ने पुनः इस प्रकार कहा—

५६. एक बार मैं राजसभा में अनेक लोगों के साथ बैठा था। तब मेरा नगररक्षक एक चोर को लेकर आया।

५७. उसके प्रचुर अपराध को देखकर मैंने जीवित ही उसको एक कुंड में गिरा कर उसके (कुंड के) मुंह को शीघ्र ढक दिया।

५८. लोहमय रस से उसके छेदों को बंद कर, अनेक लोगों को वहां स्थापित कर मैं अपने राजमहल में चला गया।

५९. अनेक दिन बीत गये। मैं पुनः वहां आया। मैंने कुंड को खोला। तब मैंने चोर को मृत पाया।

६०-६१. लेकिन कुंड के कोई भी छिद्र मेरे दृग्गोचर नहीं हुआ। यदि जीव शरीर से भिन्न होता तो जीव के बाहर जाने पर कुंड के छेद हो जाता। किंतु मैंने देखा— नहीं हुआ। तब मेरा यह मत सुदृढ हो गया कि जीव शरीर से भिन्न नहीं है।

६२. राजा का यह वचन सुनकर केशी श्रमण ने कहा— क्या तुमने कूटगृह देखा है। राजा ने कहा— हां।

६३-६४. तब केशी स्वामी ने प्रतिबोध देते हुए राजा से कहा— यदि कोई व्यक्ति सुगुप्त द्वार वाले और छिद्ररहित कूटगृह में स्थित होकर भेरी बजाये तो क्या उसका शब्द बाहर जाता है ? केशी स्वामी के इस वचन को सुनकर राजा ने कहा— हां, बाहर जाता है।

पुच्छेइ केसी विवरं तयाणिं, हुवेइ किं कूडगिहस्स तस्स ।
साहेइ भूवो अण होइ तस्स, चवेइ केसी य तयाणि तं य ॥६५ ॥

छिद्दं विणा भूव ! जहा य बाहिं, गमेइ भेरीअ रवं य झत्ति ।
जीवो तहा अप्पडिणासजाणो[१३], पहू य गंतुं य असेसलोए ॥६६ ॥

भेत्तूण अद्दिं पुढविं सिलं य, अओ कुणेज्जा इर पच्चओ तं ।
जीवो सरीराउ य अत्थि भिन्नो, कयाइ सो अत्थि ण एगरूवो ॥६७ ॥
(जुग्गं)

सोऊण केसिस्स वयं य इत्थं, चवेइ भूवो अवरं य वत्तं ।
एगया हं रायसहाअ आसि, अणेगमच्चेहि समं तयाणिं ॥६८ ॥

घेत्तूण एगं किर तक्करं य, समागओ मे पुररक्खगो य ।
दट्ठूण मंतुं पउरं य तस्स, अयस्स कुंडे ममए य खित्तो ॥६९ ॥

कुंडं य सम्मं पिहिऊण तत्थ, णिओइआ[१४] केइ णरा ममाइ ।
उग्घाडिओ सो ममए तयाणिं, जया अणेगे दिवसा वईआ ॥७० ॥

कुंडो तया कीडगसंकुलो य, णिहालिओ णो विवरं य किं वि ।
छिद्दं विणा तत्थ कहं य कीडा, समागया अच्छरियं य चित्ते ॥७१ ॥

दट्ठूण कीडा अहयं य तत्थ, विआणिओ[१५] णो किर अत्थि भिन्नो ।
जीवो सरीराउ दढं मयं मे, ण अण्णहा तत्थं कहं य कीडा ॥७२ ॥

सोऊण इत्थं वयणं णिवस्स, कहेइ केसी समणो य तं णं ।
धंतो तए किं लोहमयो य गोलो, णिहालिओ राय ! कयाइ अत्थ ॥७३ ॥
'आम' त्ति भूवो पिसुणेइ केसी, तयाणि पुच्छेइ पुणो इणं तं ।
किं होइ सो छिद्दमयो य गोलो, जओ य अग्गी पविसेइ तम्मि ॥७४ ॥
'णाइं' ति भूवो य तया चवेइ, कहेइ केसी वयणं इणं तं ।
छिद्दं विणा राय ! जया य वण्ही, रिएइ[१६] गोलम्मि तहेव भूव ! ॥७५ ॥
जीवो वि सव्वत्थ चएइ गंतुं, ण कं वि संकं हिअयम्मि कुज्जा ।
सोऊण केसिस्स इमं य वाणिं, चवेइ भूवो अवरं य वत्तं ॥७६ ॥
(जुग्गं)

एगो णरो जाव अयस्स भारं, चयेइ वोढुं इर जोव्वणम्मि ।
वोढुं ण सक्को विवहं स ताव, जरं य लहेऊण परं य अत्थ ॥७७ ॥

---

(१३) अप्रतिनाशयान: अप्रतिहतगति: इत्यर्थ: । (१४) नियोजिता ।
(१५) विज्ञात: (१६) प्रविशति (प्रविशेरिअ:— प्रा.व्या. ८ ।४ ।१८३) ।

६५. केशी स्वामी ने पूछा— क्या कूटगृह के कोई छिद्र होता है ? राजा ने कहा- नहीं। तब केशी स्वामी ने कहा—

६६-६७. राजन् ! जिस प्रकार छिद्र के बिना भेरी का शब्द शीघ्र बाहर चला जाता है उसी प्रकार अप्रतिहतगतिवाला जीव पहाड़, पृथ्वी, शिला का भेदन कर समस्त लोक में जाने में समर्थ है। अतः तुम विश्वास करो-जीव शरीर से भिन्न है, वह एकरूप नही है।

६८. केशी स्वामी के इस प्रकार के वचन को सुनकर राजा ने दूसरी बात कही। एक बार मैं राजसभा में अनेक मनुष्यों के साथ था।

६९. मेरा नगररक्षक एक चोर को लेकर आया। उसके प्रचुर अपराध को देखकर मैंने उसे लोहे के कुंड में गिरा दिया।

७०. कुंड को अच्छी तरह ढक कर मैंने वहां कुछ व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया। जब अनेक दिन व्यतीत हो गये तब मैंने उसे खोला।

७१. मैंने कुंड को कीड़ों से संकुल देखा किंतु कोई छिद्र दिखाई नहीं दिया। बिना छिद्र के वहां कीड़े कैसे आ गये, मेरे मन में आश्चर्य हुआ ?

७२. कीड़ों को वहां देखकर मैंने जान लिया कि जीव शरीर से भिन्न नहीं है और यह मेरा दृढ मत है। अन्यथा वहां कीड़े कहां से आते ?

७३. राजा के इस वचन को सुनकर केशी श्रमण ने कहा— क्या तुमने धंत लोहमय गोले को देखा है।

७४. राजा ने कहा- हां। केशी स्वामी ने पुनः पूछा— क्या वह गोला छिद्रमय होता है जिससे अग्नि उसमें प्रविष्ट होती है ?

७५-७६. राजा ने कहा— नहीं। तब केशी स्वामी ने कहा— राजन् ! जिस प्रकार छिद्र के बिना भी अग्नि गोले में प्रविष्ट हो जाती है उसी प्रकार जीव भी सर्वत्र जाने के लिए समर्थ है। अतः मन में कोई भी शंका मत करो। केशी स्वामी की यह वाणी सुनकर राजा ने दूसरी बात कही।

७७. एक व्यक्ति यौवनकाल में जितना लोहे का भार ढोने के लिए समर्थ है उतना वह वृद्धावस्था को प्राप्त कर ढोने में समर्थ नहीं है।

जीवो सरीराउ ण अत्थि भिन्नो, हुवेज्ज चे सो य कहं ण सक्को ।
सम्मं मयं मे य अओ य अत्थि, तणूअ जीवो इर णत्थि भिन्नो ॥७८ ॥

सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, कहेइ केसी पडिबोहमाणो ।
एगो य सिप्पी णवसिक्कएहिं, चएइ वोढुं इर जाव भारं ॥७९ ॥

किं ताव भारं जरसिक्कएहिं, तरेइ वोढुं णिवई ! स लोए ।
साहेइ भूवो अण सो समत्थो, चवेइ केसी य तयाणि इत्थं ॥८० ॥
(जुग्गं)

अप्पा सया होइ य एगरूवो, वउं परं होइ ण एगरूवं ।
बालो वयट्ठो य हुवेइ वुड्ढो, परं ण अप्पा य कयाइ होइ ॥८१ ॥

सत्ती सरीरस्स कयाइ वुड्ढिं, कयाइ हाणिं य गमेइ राय ! ।
भारं य वोढुं पुरिमं समत्थो, हुवेइ सो च्चेअ पुणो असक्को ॥८२ ॥

तं पच्चअं भो ! णिवई कुणेज्जा, तणूअ अप्पा इर अत्थि भिन्नो ।
सोऊण केसिस्स इमं य वाणिं, चवेइ राया पुण तं य इत्थं ॥८३ ॥

हं एगया रायसहाअ आसि, अणेगमच्चेहि समं ठिओ हु ।
णेऊण एगं किर तक्करं य, समागओ मे पुररक्खगो य ॥८४ ॥

माणं तया तस्स य जीविअस्स, मए तया तोलिअ मारिओ सो ।
पच्छा पुणो तस्स मयस्स माणं, मए पुणो हंद य तोलिअं य ॥८५ ॥

माणे तया तस्स ण को वि भेओ, समागओ तत्थ मये य जीए ।
जाया तया मे सुदिढा य भावा, तणूअ अत्ता इर अत्थि भिन्नो ॥८६ ॥
तणूअ अप्पा जइ होज्ज भिन्नो, तयाणि माणम्मि हुवेज्ज भेओ ।
भेओ य जाओ ण परं य किंचि, अओ विआरो सुदिढो य मज्झं ॥८७ ॥
सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, चवेइ केसी पडिबोहमाणो ।
चम्मस्स दिट्ठं मसगं तए किं, कयाइ कंपाङ्क[१७]पपूरिअं य ॥८८ ॥
सोऊण केसिस्स इमं य पण्हं, कहेइ 'आम' त्ति गिरं तयाणि ।
पुच्छेइ केसी य पुणो वि इत्थं, समीररिक्के[१८] उअ वाउपुण्णे ॥८९ ॥
भेओ तया किं मसगप्पमाणे, हुवेइ भूवो पिसुणेइ णाइं ।
केसी तया तं पडिबोहमाणो, चवेइ इत्थं महुरं य वाणिं ॥९० ॥
(जुग्गं)

(१७) वायुप्रपूरितम् (१८) समीररिक्ते ।

७८. यदि जीव शरीर से भिन्न होता तो वह कैसे समर्थ नहीं होता ? अतः मेरा मत ठीक है कि जीव शरीर से भिन्न नहीं है।

७९-८०. राजा की इस वाणी को सुनकर केशी स्वामी ने प्रतिबोध देते हुए कहा– एक शिल्पी नये छींकों से जितना भार ढोने के लिए समर्थ है उतना भार क्या वह जीर्ण छींको से ढोने के लिए समर्थ है ? राजा ने कहा– वह समर्थ नहीं है। तब केशी स्वामी ने इस प्रकार कहा—

८१. आत्मा सदा एकरूप होती है। किंतु शरीर एकरूप नहीं होता। वह बालक, तरुण और वृद्ध होता है, पर आत्मा कभी नहीं होती।

८२. राजन् ! शरीर की शक्ति कभी बढ जाती है और कभी कम हो जाती है। अतः जो व्यक्ति पहले भार ढोने में समर्थ होता है वही पुनः अशक्त हो जाता है।

८३. अतः तुम विश्वास करो कि आत्मा शरीर से भिन्न है। केशी स्वामी की इस वाणी को सुनकर राजा ने पुनः इस प्रकार कहा—

८४. एक बार मैं राजसभा में अनेक व्यक्तियों के साथ बैठा था। मेरा नगर रक्षक एक चोर को लेकर आया।

८५. मैंने उस जीवित चोर के वजन को तोलकर उसे मार दिया। तत्पश्चात् मैंने मरे हुए उसका वजन तोला।

८६. जीवित और मृत अवस्था के वजन में कोई अंतर नहीं आया। तब मेरे विचार सुदृढ हो गये कि आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है।

८७. यदि आत्मा शरीर से भिन्न होती तो वजन में अन्तर होता पर कुछ भी अन्तर नहीं हुआ। अतः मेरे विचार सुदृढ है।

८८. राजा की इस वाणी को सुनकर केशी स्वामी ने प्रतिबोध देते हुए कहा– क्या तुमने वायु से पूरित चमड़े का मशक देखा है ?

८९-९०. केशी स्वामी का यह प्रश्न सुनकर राजा ने कहा— हाँ ! तब केशी स्वामी ने पुनः इस प्रकार पूछा- क्या वायुरहित और वायु से परिपूर्ण मशक के वजन में कोई अन्तर होता है ? राजा ने कहा- नहीं। तब केशी स्वामी ने उसको प्रतिबोध देते हुए इस प्रकार मधुरवाणी में कहा—

अप्पा सया होइ य भारमुक्को, सया सरीरस्स हुवेइ भारो ।
देहं चइत्ता स जया गमेइ, तया वि गत्तस्स हुवेइ भारे ॥९१ ॥

णो अंतरं किं वि अओ पएसी !, मण्णेज्ज सच्चं कहणं य मज्झं ।
अप्पा सरीराउ य अत्थि भिन्नो, तणू य अप्पा अण अत्थि एगो ॥९२ ॥
(जुग्गं)

सोऊण केसिस्स इमं य वाणिं, कहेइ राया अवरं य वत्तं ।
हं एगया रायसहाअ आसि, तयाणि एगं गहिऊण दस्सुं ॥९३ ॥

मज्झं समीवे पुररक्खगो य, समागओ सो ममए य दिट्ठो ।
दिट्ठीअ सण्हाअ[१९] परं ण जीवो, मए तया तम्मि णिहालिओ य ॥९४ ॥
(जुग्गं)

खंडा तया तस्स कया अणेगे, परं ण जीवो ममए पलद्धो ।
जाओ विआरो सुदिढो तया मे, तणूअ अप्पा अण अत्थि भिन्नो ॥९५ ॥

सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, कहेइ केसी तुममत्थि मूढो ।
मूढं य सद्दं सुणिऊण राया, गओ बहुं अच्छरिअं मणम्मि ॥९६ ॥

पुच्छेइ केसी अहयं य मूढो, कहं इयाणिं इर विज्जए य ।
सोऊण भूवस्स इमं य पण्हं, कहेइ केसी वयणं इमं य ॥९७ ॥

णेऊण अग्गिं हविभायणम्मि, गया वणेसुं इर एगया य ।
कट्ठाणि छेत्तुं चउरो मणुस्सा, गये दविट्ठे पिसुणेंति एगं ॥९८ ॥
कट्ठाणि णेऊण वणम्मि दूरं, वयं य वच्चामु य संपयं य ।
ठाऊण तं अत्थ कुणेज्ज अम्हं, कये इयाणिं असणं य सज्जं ॥९९ ॥
विज्झेज्ज अग्गी य जया य भाय !, तयाणि अग्गिं अरणीअ कट्ठा ।
णिस्सारिऊणं य तुमं कुणेज्जा, कयम्मि अम्हं असणं य दुत्ति ॥१०० ॥
वोत्तूण णं ते पगया दविट्ठं, वणम्मि कट्ठं इर णेउकामा ।
पाचेउकामो असणं य पच्छा, तयाणि उग्गेइ[२०] किसाणुपत्तं[२१] ॥१०१ ॥
दट्ठूण तत्थ विज्झविअं य अग्गिं, उवागओ सो अरणीअ कट्ठा ।
देक्खेइ सम्मं परिओ य तं य, परं तहिं पासइ णो य अग्गिं ॥१०२ ॥
कुव्वेइ कट्ठस्स अणेगखंडा, परं ण पेच्छेइ तयाणि वण्हिं ।
चिंताउरो सो पगयो तयाणिं, पहू ण काउं असणं अओ य ॥१०३ ॥

(१९) सूक्ष्मया । (२०) उद्घाटयति (उद्घटेरुग्गः ८ ।४ ।३३) । (२१) अग्निपात्रम् ।

९१-९२. आत्मा सदा भारमुक्त होती है। भार सदा शरीर का होता है। जब वह (आत्मा) शरीर को छोड़कर चली जाती है तब भी शरीर के भार में कुछ भी अन्तर नहीं होता। अत: प्रदेशी ! मेरे इस सत्य कथन को मानो कि आत्मा शरीर से भिन्न है। शरीर और आत्मा एक नहीं है।

९३-९४. केशी स्वामी की इस वाणी को सुनकर राजा ने दूसरी बात कही। एक बार मैं राजसभा में था। तब मेरा नगररक्षक एक चोर को लेकर आया। मैंने उसको सूक्ष्मदृष्टि से देखा। किंतु मैंने उसमें जीव नहीं देखा।

९५. तब मैंने उसके अनेक टुकड़े किये पर जीव नहीं पाया। अत: मेरा विचार सुदृढ हो गया कि शरीर से आत्मा भिन्न नहीं है।

९६. राजा की इस वाणी को सुनकर केशी स्वामी ने कहा— तुम मूढ हो। 'मूढ' शब्द सुनकर राजा मन में विस्मित हुआ।

९७. राजा ने केशी स्वामी से पूछा- मैं मूढ कैसे हूँ ? राजा के प्रश्न को सुनकर केशी स्वामी ने यह कहा—

९८. एक बार चार मनुष्य अग्निपात्र में अग्नि लेकर वन में काष्ठ काटने के लिए गये। दूर जाने पर उन्होंने एक को कहा—

९९. हम काष्ठ लाने के लिए वन में दूर जा रहे हैं। तुम यहीं ठहर कर हमारे लिए भोजन तैयार करो।

१००. जब अग्नि बुझ जाये तब अरणि-काष्ठ से अग्नि को निकाल कर तुम हमारे लिए भोजन बनाना।

१०१. यह कहकर वे काष्ठ लाने के इच्छुक हो वन में दूर चले गये। तत्पश्चात् भोजन बनाने के लिए उसने अग्निपात्र को खोला।

१०२. उसमें अग्नि को बुझी हुई देखकर वह अरणि-काष्ठ के पास आया। उसने उसे चारों ओर से अच्छी तरह देखा। किंतु उसे वहां अग्नि दिखाई नहीं दी।

१०३. उसने अरणि-काष्ठ के अनेक टुकड़े किये। किंतु अग्नि नहीं देखी। तब वह चिंतातुर हो गया क्योंकि वह भोजन नहीं बना सका था।

णेऊण कट्ठाइ जया समाआ, परे जणा तत्थ तयाणि ते य ।
चिंताउरं तं य णिहालिऊणं, पुच्छेइ चिंताअ तयाणि बीअं ॥१०४ ॥

साहेइ चिंताअ य सो निमित्तं, चवेइ एगो सुणिआण तं य ।
ण्हाणं य काउं य गमेज्ज़ तुब्भे, अहं य सज्जं असणं कुणेमि ॥१०५ ॥
(जुग्गं)

वत्तं सुणेऊण इमं य तस्स, समे तयाणिं ण्हाणिउं गया य ।
णेऊण पच्छा अरणीअ कट्ठं, सरस्स कट्ठेण समं य सो य ॥१०६ ॥

संघस्सिऊणं अगणिं जणेइ, कुणेइ सज्जं असणं य पच्छा ।
ण्हाणं कुणेऊणं समागया ते, जया तया अच्छरिअं गया ते ॥१०७ ॥

भोत्तूण सव्वे असणं तयाणिं, मणम्मि मोअं पउरं गया ते ।
साहेइ पच्छा पढमं णरं सो, लसेसि मूढो य तुमं य णूणं ॥१०८ ॥

काऊण कट्ठस्स बहुं य खंडं, महेइ जं तं य हुआसणं य ।
इत्थं य अग्गी य जणेइ किं य, कहं समुप्पज्जइ सो कहेइ ॥१०९ ॥

दिट्ठंतमेअं य सुणाविऊण, चवेइ केसी य तुमं वि तहेव ।
मूढो पएसी ! अण का वि संका, महेइ जीवो य तणूअ खंडा ॥११० ॥

सोऊण केसिस्स य जुत्तिपुव्वं, वयं तयाणिं णिवई कहेइ ।
णाणी भवं अत्थि थामवं य, चयेइ[२३] किं मज्झ करे इयाणिं ॥१११ ॥

तं[२४] दंसिउं आमलगव्व जीवं, चवेइ केसी सुणिऊण इत्थं ।
तुज्झं समीवं य तणाणि जाइं, हुवेंति इण्हि इर कंपिआइं ॥११२ ॥

को कंपिआइं य कुणेइ ताइं, सुरो णरो वा असुरो य को वि ।
साहेइ भूवो अवरो ण को वि, करेइ वाऊ तुरिअं इमाइं ॥११३ ॥
(तीहिं विसेसगं)

पुच्छेइ केसी पवणं य को वि, णरो समत्थो य णिहालिउं किं ।
चवेइ भूवो अण को वि अत्थि, जगम्मि दट्ठुं अहुणा समीरं ॥११४ ॥

साहेइ केसी अहयं कहं तं,[२५] चएमि जीवं य णिहालिउं य ।
छम्मत्थमच्चा दसवत्थुजायं, सहा[२६] ण णाउं णणु पेच्छिउं य ॥११५ ॥

---

(२३) शक्नोति । (२४) तं वाक्योपन्यासे ।
(२५) त्वाम् । (२६) समर्थाः ।

१०४. जब दूसरे मनुष्य काष्ठ लेकर वहां आये तब उन्होंने उसे चिंतामग्न देखकर चिंता का कारण पूछा।

१०५. उसने चिंता का हेतु बताया। उसको सुनकर एक व्यक्ति ने कहा— तुम सब स्नान करने के लिए जाओ। मैं भोजन तैयार करता हूँ।

१०६-१०७. उसकी इस बात को सुनकर सभी स्नान करने चले गये। तत्पश्चात् उसने अरणि-काष्ठ को लेकर सर के काष्ठ के साथ घिसकर अग्नि पैदा की और भोजन बनाया।जब वे स्नान करके आये तब उन्हें आश्चर्य हुआ।

१०८. भोजन करके वे सभी मन में प्रसन्न हुए। तब उसने प्रथम व्यक्ति को कहा— तुम निश्चित ही मूढ हो।

१०९. काष्ठ के बहुत टुकड़े करके तुम अग्नि चाहते हो। क्या इस प्रकार अग्नि उत्पन्न होती है ? अग्नि कैसे उत्पन्न होती है— उसने बताया।

११०. इस दृष्टान्त को सुनाकर केशी स्वामी ने कहा- प्रदेशी ! तुम भी वैसे ही मूढ हो, इसमें संदेह नहीं है। क्योंकि तुम शरीर के टुकड़ों से जीव चाहते हो।

१११-११२-११३. केशी स्वामी के युक्तिपूर्वक वचन को सुनकर राजा ने कहा— आप ज्ञानी हैं, शक्तिमान् हैं, क्या आप अभी मेरे हाथ में आंवले की तरह जीव को दिखाने के लिए समर्थ हैं ? यह सुनकर केशी स्वामी ने कहा- तुम्हारे सामने जो तृण कंपित (हिल) हो रहे हैं, उन्हें कौन कंपित कर रहा है ? क्या कोई देव, मनुष्य या असुर कंपित कर रहा है ? राजा ने कहा- दूसरा कोई नहीं, केवल वायु ही कंपित कर रहा है।

११४. तब केशी स्वामी ने पूछा— क्या कोई भी मनुष्य पवन को देखने में समर्थ है ? राजा ने कहा- संसार में कोई भी पवन को देखने में समर्थ नहीं है।

११५. केशी स्वामी ने कहा— तब मैं कैसे तुम्हें जीव को दिखाने में समर्थ हो सकता हूँ ? छद्मस्थ व्यक्ति दश वस्तुओं को देखने के लिए सक्षम नहीं हैं।

धम्मत्थिकायं य अहम्म(त्थि) कायं, सरीरहीणं इर जीवकायं ।
आगासरूवं इर अत्थिकायं, तं[२७] पोग्गलं भो ! परमाणुरूवं ॥११६ ॥

सद्दं य गंधं पवणं य जिणं तं, इहं हुविस्सेइ य आयईए ।
अंतं कुणिस्सइ जो दुहस्स, मुणेइ णो तं छउमत्थमच्चो ॥११७ ॥

सोऊण केसिस्स य जुत्तिपुव्वं, वयं पुणो पुच्छइ भूवई णं ।
जीवो सरिच्छो य हुवेइ किं य, गयस्स कुंथुस्स सया य दोण्हं ॥११८ ॥

साहेइ 'आम' त्ति तयाणि केसी, पुणो य पुच्छेइ णिवो य इत्थं ।
किं अप्पकम्मो किरिआअ अप्पो, तणू य कंती णणु अप्पइड्ढी ॥११९ ॥

ऊसासनीसासतणू हुवेइ, गयेण कुंथू इर अप्पभोई ।
साहेइ 'आम' त्ति तयाणि केसी, पुणो य पुच्छेइ णिवो य इत्थं ॥१२० ॥

किं कुंथुणा होइ गयो य लोए, अनप्पकम्मो य अनप्पकंती ।
ऊसासनीसासवहुत्तरूवो, अनप्पइड्ढी य अनप्पभोई ॥१२१ ॥

होज्जा गुरू किं किरियासु तेण, णिसम्म भूवस्स इमं य पण्हं ।
साहेइ 'आम' त्ति समणो य केसी, चवेइ भूवो य तयाणि तं य ॥१२२ ॥

दोसुं जया अत्थि य अंतरं य, तहा कहं होइ समो य जीवो ।
सोऊण इत्थं णिवइस्स पण्हं, कहेइ केसी वयणं इणं य ॥१२३ ॥

रक्खेज्ज चे कूडगिहस्स मज्झे, णरो पईवं जइ को कयाइ ।
भासेज्ज[२८] पुण्णं इर कूडगेहं, परं पगासेइ ण बाहिरं सो ॥१२४ ॥

एगं य वत्थुं जइ तस्स उब्भं, पिहेज्ज भासेइ तयाणि तं य ।
भासेइ णाइं इर कूडगेहं, बहूहि वत्थूहि तहेव छन्नो ॥१२५ ॥

कम्मोदएणं य लहुं महं वा, वउं य बंधेइ य जारिसं य ।
जीवस्स तस्सिं सयला पएसा, समाहिआ होंति तयाणि राय ! ॥१२६ ॥

एअं कुणेज्जा णणु पच्चअं तं, तणूअ जीवो इर अत्थि भिन्नो ।
सोऊण केसिस्स य जुत्तिपुव्वं, वयं तयाणिं णिवई चवेइ ॥१२७ ॥

साहेइ सम्मं सयलं भवं य, परं कहं हं स-मयं चएज्जा ।
एगागिणो मज्झ मयं इणं णो, परंपराए य कुलस्स आअं[२९] ॥१२८ ॥

---

(२७) तं वाक्योपन्यासे । (२८) दीप्येत् । (२९) आगतम् ।

११६-११७. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, शरीर रहित जीव, आकाशास्तिकाय, परमाणु पुद्गल, शब्द, गंध, वायु, भविष्यकाल में जो जिन होगा तथा यह दु:ख का अंत करेगा- छद्मस्थ उन्हें नहीं जानता है।

११८. केशी स्वामी के युक्तिपूर्वक वचन को सुनकर राजा ने पुनः यह पूछा– क्या हाथी और कुंथु दोनों का जीव समान होता है?

११९-१२०. तब केशी स्वामी ने कहा– हाँ ! राजा ने पुनः इस प्रकार पूछा- क्या हाथी से कुंथु अल्पकर्मा, अल्पक्रियावान्, अल्पकांतिवान्, अल्पऋद्धिमान्, अल्प उच्छ्वास नि:श्वास वाला तथा अल्पभोजी है। केशी स्वामी ने कहा- हाँ। तब राजा ने पुन: पूछा—

१२१-१२२. क्या कुंथु से हाथी प्रचुर कर्मवाला, प्रचुर कांतिवाला, बहुत उच्छ्वास— निश्वास वाला, प्रचुर ऋद्धि वाला, प्रचुर भोजन करने वाला और महाक्रिया वाला है। राजा के इस प्रश्न को सुनकर श्रमण केशी ने कहा- हाँ। तब राजा ने उन्हें कहा—

१२३. दोनों में जब अंतर है तब दोनों का जीव कैसे समान है ? इस प्रकार राजा का प्रश्न सुनकर केशी स्वामी ने यह कहा—

१२४. यदि कोई व्यक्ति कूटगृह के मध्य में दीपक रखे तो वह संपूर्ण कूटगृह को प्रकाशित करता है किंतु बाहर प्रकाश नहीं करता।

१२५-१२६. यदि उसे (दीपक को) एक या अनेक वस्तु से ढक दे तो वह कूटगृह को प्रकाशित नहीं करता। उसी प्रकार हे राजन् ! कर्मोदय से छोटा या बड़ा जैसा शरीर बंधता है उसमें जीव के समस्त प्रदेश समाहित हो जाते हैं।

१२७. अत: तुम यह विश्वास करो कि जीव शरीर से भिन्न है। केशी स्वामी के युक्तिपूर्वक वचन को सुनकर राजा ने कहा—

१२८. आप सब ठीक कहते हैं किंतु मैं अपने मत को कैसे छोड़ दूं ? यह मत मेरे अकेले का नहीं है किंतु कुल परंपरा से आया हुआ है।

सोऊण भूवस्स सरस्सइं णं, चवेइ केसी णिवइं य इत्थं ।
पच्छाणुतावं अयभारवाह-णरव्व तं काहिसि अत्थ अंते ॥१२९॥

अप्पं मयं णो जइ तुं चएज्जा, णिसम्म केसिस्स इमं य वाणिं ।
पुच्छेइ राया य कहं य भंते !, कुणीअ तावं स भारवाहो ॥१३०॥
(जुग्गं)

साहेइ केसी चउरो मणुस्सा, गया हिरण्णं विढवेउकामा[30] ।
ते किंचि दूरं य जया गमेंति, लहेंति लोहस्स खनिं तयाणिं ॥१३१॥

इच्छाणुरूवं इर गिण्हिऊण, अयं[31] जया ते पुरओ गया य ।
तंबस्स खाणिं य तया लहीअ, कुणीअ दट्ठूण विआरमेयं ॥१३२॥

लोहेण तंबस्स बहुं य मुल्लं, अओ य गेण्हेज्ज य तं इयाणिं ।
लोहं चइत्ताण तहिं य तिण्णि, णरा य गेण्हेंति परं ण एगो ॥१३३॥

घेत्तूण तंबं किर किंचि दूरं, जया गया तेहि णिहालिआ य ।
रुप्पस्स खाणी बहुमुल्लरूवा, णिहालिऊणं य विआरियं य ॥१३४॥

तंबाउ रुप्पस्स बहुं य मोल्लं, अओ य गेण्हेज्ज य तं इयाणिं ।
तंबं चइत्ताण य तिण्णि तत्थ, णरा य गेण्हेंति परं ण एगं ॥१३५॥

णेऊण रुप्पं किर किंचि दूरं, जया गया णेहि णिअच्छिआ य ।
खाणी वसूणं बहुमुल्लवाणं, णिहालिऊणं य विचिन्तिअं य ॥१३६॥

रुप्पस्स मोल्लं पउरं वसूणं, अओ य गेण्हेज्ज य तं इयाणिं ।
णं चिंतिऊणं चइऊण रुप्पं, णरा य गेण्हेंति य तं य तिण्णि ॥१३७॥

णीओ य लोहो मणुएण जेण, ण सो य गेण्हेइ वसुं तयाणिं ।
साहेंति ते तिण्णि य गिण्हिउं तं, वसुं परं गेण्हइ सो य णाइं ॥१३८॥

सो अग्गहं णो णिअगं चएइ, हिअं वयं मण्णइ तेसि णाइं ।
दट्ठूण ते तस्स य अग्गहं णं, विचिन्तिअं तेहि तयाणि इत्थं ॥१३९॥
हा ! भग्गहीणाण मई हुवेइ, विणासयाले[32] विवरीयरूवा ।
तस्सिं य काले हिअयं वि वाणिं, परेसि ते णो उररीकुणेंति ॥१४०॥
इत्थं विआरं कुणिऊण ते य, वसूणि घेत्तूण समं य तेणं ।
आगम्म दंगे णिअगम्मि गेहे, गया तयाणिं य पसण्णचित्ता ॥१४१॥

(३०) अर्जयितुकामाः (अजेर्विढवः- प्रा.व्या. ८।४।१०८)।
(३१) लोहम् । (३२) विनाशकाले ।

१२९-१३०. राजा की इस वाणी को सुनकर केशी स्वामी ने राजा को इस प्रकार कहा- यदि तुम अपना मत नहीं छोड़ेगे तो लोहे का भार उठाने वाले मनुष्य की तरह अंत में पश्चात्ताप करोगे। केशी स्वामी की वाणी सुनकर राजा ने पूछा- भंते ! उस लोह-भार को उठाने वाले व्यक्ति ने किस प्रकार पश्चात्ताप किया ?

१३१. केशी स्वामी ने कहा— चार मनुष्य धनार्जन के लिए गये। जब वे कुछ दूर गये तब उन्होंने लोहे की खान प्राप्त की।

१३२. इच्छानुरूप लोहे को ग्रहण कर जब वे आगे गये तब तांबे की खान प्राप्त की। उसको देखकर उन्होंने यह विचार किया—

१३३. लोहे से तांबे का बहुत मूल्य है अत: अभी उसे ग्रहण करना चाहिए। तीन व्यक्तियों ने लोहे को वहां छोड़कर उसे ले लिया। किंतु एक व्यक्ति ने नहीं लिया।

१३४. तांबे को लेकर जब वे कुछ दूर गये तब उन्होंने बहुमूल्यवान् चांदी की खान देखी। उसको देखकर उन्होंने सोचा—

१३५. तांबे से चांदी का बहुत मूल्य है अत: अभी उसे ग्रहण करना चाहिए। तीन व्यक्तियों ने तांबे को वहीं छोड़कर उसे ले लिया किंतु एक व्यक्ति ने नहीं लिया।

१३६. चांदी को लेकर जब वे कुछ दूर गये तब उन्होंने रत्नों की खान देखी। उसे देखकर उन्होंने विचार किया—

१३७. चांदी से रत्नों का बहुत मूल्य है अत: उसे लेना चाहिए। ऐसा सोचकर तीन व्यक्तियों ने चांदी को छोड़कर रत्न ले लिये।

१३८. जिस व्यक्ति ने लोहा लिया था उसने तब रत्न नहीं लिये। उन तीनों ने उसे रत्न लेने के लिए कहा किंतु उसने नहीं लिया।

१३९. वह न अपना आग्रह छोड़ता है और न हित वचन को मानता है। उसके इस आग्रह को देखकर तब इन्होंने इस प्रकार विचार किया—

१४०. हा ! भाग्यहीन व्यक्तियों की विनाश काल में बुद्धि विपरीत हो जाती है। उस समय वे दूसरों की हितकारी वाणी को भी स्वीकार नहीं करते हैं।

१४१. इस प्रकार विचार करके तब वे रत्न लेकर उसके साथ नगर में आकर प्रसन्नमना अपने-अपने घर चले गये।

कारेंति गेहाणि मणोहराइं, वसूणि ते तत्थ य विक्किऊणं ।
अप्पं य कालं य सुहेण ते य, जवेंति चिंता अण का वि चित्ते ॥१४२॥
विक्केइ लोहं अयवं मणुस्सो, परं ण वित्तं पउरं लहेइ ।
कुव्वेइ कज्जं अवरं तयाणिं, समज्जिउं सो विहवं वहुत्तं ॥१४३॥
दट्ठूण तेसिं य गिहाणि सो य, कुणेइ तावं णिअगम्मि चित्ते ।
चिंतेइ चित्ते जइ हं वि णेज्जा, वसूणि मज्झं वि हुवेज्ज गेहं ॥१४४॥
किं होइ तावेण परं इयाणिं, तहा कुणिस्सेसि तुमं वि तावं ।
सोऊण केसिस्स इमं य वाणिं, चवेइ भूवो अण हं कयाइ ॥१४५॥
से सारिसो संपइ णो हुविस्सं, भवाण पासे सुणिहामि धम्मं ।
इत्थं चवेऊण समागओ सो, समं य चित्तेण स-मंदिरम्मि ॥१४६॥
(जुग्गं)

राणीअ पुत्तेण[३३] समं य बीये, दिणे स केसिं य उवागओ य ।
साहेइ केसी णिवइं तयाणिं, सुधम्मरूवं इर वित्थरओ य ॥१४७॥

सोऊण धम्मं उररीकुणेइ, णिवो तयाणिं य गिहत्थधम्मं ।
पच्छा य केसिं णमिऊण सो य, णिअं पुरिं गंतुमणो हुवीअ ॥१४८॥
साहेइ केसी णिवइं पएसिं, इणं तया सिक्खवयं अमुल्लं ।
तुं णट्टसाला वणसंड इक्खू-खलाण वाडव्व कयाइ राय! ॥१४९॥
होऊण पुव्विं रमणिज्जरूवो, हुवेज्ज पच्छा ण अंकतरूवो ।
पुच्छेइ भूवो य कहं इमे य, हुवेंति पच्छा[३४] रमणिज्जरूवा ॥१५०॥
(जुग्गं)

सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, चवेइ केसी णिवइं पएसिं ।
वित्थारओ तेसि तयाणि हेउं, सुणेइ राया अवहाणचित्तो ॥१५१॥

नट्टाइकज्जं जइ णट्टगेहे[३५], हुवेइ सा दिस्सइ मंजुरूवा ।
णट्टाइकज्जं जइ णो हवेइ[३६], तयाणि सा होइ अकंतरूवा ॥१५२॥
उच्छूअ वाडा इर छेयणाइ — कये सया होइ य रम्मरूवा ।
णो छेयणाई जइ ताअ होइ, तयाणि सा होइ अवग्गुरूवा ॥१५३॥
पुप्फेहि पत्तेहि फलेहि होइ, वणं सया पेसलरूवगं य ।
तेहिं विणा तं अमणोरमं य, हुवेइ णूणं अण संसओ य ॥१५४॥

(३३) सूर्यकान्तानामधेया रानी, सूर्यकान्तनामधेयः पुत्रः । (३४) पच्छा + अरमणिज्जरूवा
(३५) वादौ (प्रा. व्या.— ८ ।१ ।२२९) इति सूत्रेण आदेः नकारस्य विकल्पेन णो भवति ।
(३६) भुवे र्हो हुव हवाः (प्रा.व्या. ८ ।४ ।६०) इति सूत्रेण होइ, हुवेइ, हवेइ भवन्ति ।

१४२. उन्होंने रत्नों को बेचकर मनोहर गृह बनवाये। वे अपना समय सुखपूर्वक बिताने लगे। उनके मन में कोई चिंता नहीं थी।

१४३. लोहा लेने वाले मनुष्य ने लोहे को बेचा किंतु उसे प्रचुर धन प्राप्त नहीं हुआ। तब धनार्जन के लिए वह दूसरा कार्य करने लगा।

१४४. उनके घरों को देखकर वह मन में अनुताप करने लगा और सोचने लगा— यदि मैं भी रत्नों को ले लेता तो मेरे भी घर हो जाता।

१४५-१४६. किंतु अब अनुताप करने से क्या? उसी प्रकार तुम भी अनुताप करोगे। केशी स्वामी की यह वाणी सुनकर राजा ने कहा— मैं उसके समान नहीं होऊंगा। मैं आपके समीप में धर्म सुनूंगा। इस प्रकार कहकर वह चित्र के साथ अपने महल में आ गया।

१४७. दूसरे दिन वह रानी (सूर्यकान्ता) और पुत्र (सूर्यकान्त) सहित केशी स्वामी के पास आया। केशी स्वामी ने राजा को विस्तार से धर्म का स्वरूप बताया।

१४८. धर्म सुनकर राजा ने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। तत्पश्चात् केशी स्वामी को नमस्कार कर वह नगर में जाने का इच्छुक हुआ।

१४९-१५०. तब केशी स्वामी ने राजा प्रदेशी को इस प्रकार अमूल्य वचन कहे— राजन्! तुम नाट्यशाला, वनखंड, इक्षुवाट, खलवाट (खलिहान) की तरह पहले रमणीय होकर अरमणीय मत होना। राजा ने पूछा— ये कैसे बाद में अरमणीय होते है?

१५१. राजा की वाणी सुनकर केशी स्वामी ने राजा प्रदेशी को विस्तार से उसका कारण बताया।

१५२. यदि नाट्यगृह में नाट्य आदि कार्य होते हैं तब वह रमणीय दिखाई देती है। यदि नाट्य आदि कार्य न हो तो वह अरमणीय होती है।

१५३. छेदन आदि करने पर इक्षुवाट सुंदर दिखाई देता है अन्यथा असुंदर।

१५४. पत्र, पुष्प और फलों से वनखंड मनोहर लगता है। उनके बिना वह अमनोहर लगता है— इसमें संशय नहीं।

धण्णेहि सद्धिं रमणिज्जरूवो, खलो सया होइ मणोरमो य ।
धण्णं विणा णो रुइरो हुवेइ, विचित्तमेअं भुवणम्मि अत्थि ॥१५५॥
सोऊण केसिस्स वयं य इत्थं, कहेइ भूवो अहयं कयाइ ।
होऊण पुव्विं रमणिज्जरूवो, अकंतरूवो हुविहामि णाइं ॥१५६॥
किच्चा पएसिं सुधम्मलीणं, कुणेइ केसी य तओ विहारं ।
आयाइ भूवो णिअमंदिरम्मि, करेइ सो जागरणं सुधम्मे ॥१५७॥
दट्ठूण रायं य सुधम्मलीणं, कुणेइ राणी हिअये विआरं ।
णिच्चं अयं धम्मरयो वसेइ, ण रज्जचिंतं य करेइ किंचि ॥१५८॥
भोगा ण भुंजेइ ममाइ सद्धिं, कुणेइ वत्तं ममए समं णो ।
एअस्स काऊण अओ य घायं, विसेण मंतेण परेण केण ॥१५९॥
रज्जम्मि पुत्तं इर ठाविऊण, वसेमि सायं[37] अहयं तयाणिं ।
काऊण इत्थं य विचिंतणं सा, सुअं समाहूय कहेइ सव्वं ॥१६०॥ (जुग्गं)

आढाइ णाइं कुमरो तयाणिं, विआरमेयं णिअमाअराए ।
चिंतेइ राणी स-मणम्मि इत्थं, इमो कहेज्जा णिवइं ण सव्वं ॥१६१॥
साहेइ इत्थं वयणं समायं, कया परिक्खा तुह संपयं मे[38] ।
किं का वि इत्थी य कुणेइ चेट्ठं, कयाइ हंतुं णिअगं धवं य ॥१६२॥
इत्थं कुमारं कहिऊण सा तं, दुअं य पेसेइ णिअं य ठाणं ।
भूवं य हंतुं य कुणेइ पच्छा, मणम्मि सा कं वि जोअणं य ॥१६३॥
दट्ठूण वेलं य मणोणुऊलं, गया सइं सा लहु पागसालं ।
मेलेइ भूवस्स य भोअणम्मि, विसं तया सा इर दुट्ठचित्ता ॥१६४॥
संसाररूवं य विचित्तमेयं, वरं पयं[39] देंति समे वि सत्थं ।
पूरेइ सत्थं णिअगं जया णो, पिओ तया हा! अपिअव्व होइ ॥१६५॥
दाऊण भूवस्स य भोअणम्मि, विसं स—ठाणम्मि समागया सा ।
खाएइ राया असणं जया तं, विसं य पाडेइ णिअं पहावं ॥१६६॥
भीमा य पीला य हुवेइ तस्स, सहेइ भूवो समभावचित्तो ।
राणीअ उब्भं ण कुणेइ रोसं, कयं इणं ताअ य बुज्झिऊणं ॥१६७॥
आगम्म सो पोसहमंदिरम्मि, कुणेइ सो संथरगं तयाणिं ।
होऊण पुव्वाभिमुहं णमेइ, जिणा य सिद्धा समणं य केसिं ॥१६८॥
आलोयणं सो कुणिऊण पच्छा, चउव्विहं सो असणं चएइ ।
सुद्धेण भावेण मइं लहित्ता, हुवेइ सोहम्मसुरेसु देवो ॥१६९॥

इइ तइओ सग्गो समत्तो

---

(३७) सातम् । (३८) मया । (३९) प्रमुखम् ।

१५५. धान्य के साथ खल मनोरम लगता है। उसके बिना वह अमनोरम लगता है। यह संसार में आश्चर्य है।

१५६. केशी स्वामी के इस प्रकार के वचन को सुनकर राजा ने कहा— मैं पहले रमणीय होकर अरमणीय नहीं होऊंगा।

१५७. राजा प्रदेशी को धर्मलीन बनाकर केशी स्वामी ने वहां से विहार कर दिया। राजा अपने महलों में आ गया और धर्मजागरणा करने लगा।

१५८. राजा को धर्म में लीन देखकर रानी ने मन में विचार किया— यह सदा धर्मरत रहता है। राज्य की कुछ भी चिंता नहीं करता है।

१५९-१६०. मेरे साथ न भोग भोगता है और न बात करता है। अतः मैं इसकी विष या किसी मंत्र से घात करके, पुत्र को राज्य पर स्थापित कर सुखपूर्वक रहूं। इस प्रकार चिंतन कर उसने पुत्र को बुलाकर सब कहा।

१६१. कुमार ने अपने माता के विचार को आदर नहीं दिया। तब रानी ने मन में सोचा— यह राजा को सब न कह दे।

१६२. उसने कपटपूर्वक उसे इस प्रकार कहा— मैंने अभी तुम्हारी परीक्षा की है। क्या कभी कोई स्त्री अपने पति को मारने के लिए चेष्टा करती है?

१६३. इस प्रकार कहकर उसने कुमार को शीघ्र अपने स्थान पर भेज दिया। तत्पश्चात् वह राजा को मारने के लिए मन में योजना बनाने लगी।

१६४. मनोनुकूल समय को देखकर वह दुष्टचित्ता एक बार शीघ्र भोजनशाला में गई और राजा के भोजन में विष मिला दिया।

१६५. संसार का यह विचित्र स्वरूप है कि सभी स्वार्थ को प्रमुखता देते हैं। जब अपने स्वार्थ की पूर्ति नहीं होती तब प्रिय भी अप्रिय की तरह हो जाता है।

१६६. राजा के भोजन में विष मिलाकर वह अपने स्थान पर चली गई। जब राजा ने उस भोजन को खाया तब विष अपना प्रभाव गिराने लगा।

१६७. उसके भंयकर पीड़ा होने लगी। राजा उसे समभाव से सहने लगा। यह रानी का कृत कार्य है ऐसा जानकर भी उसने रानी के ऊपर रोष नहीं किया।

१६८. पौषधशाला में आकर उसने बिछौना किया और पूर्वाभिमुख होकर अर्हन्त, सिद्ध और श्रमणकेशी को नमस्कार किया।

१६९. तत्पश्चात् उसने आलोचना करके चतुर्विध आहार का त्याग कर दिया। शुद्धभावों से मृत्यु को प्राप्त कर वह सौधर्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

तृतीय सर्ग समाप्त

चउत्थो सग्गो

सोऊण[1] सूरियाभदेवस्स, पुव्वं भवं पेरणप्पयं य ।
पुच्छेइ वीरं आयईए, भवं तयाणिं तस्स गोयमो ॥१ ॥

भोत्तूण देवायुं चइऊण, तओ कुह उववज्जिहिइ एसो ।
सोच्चाणं गोयमस्स पण्हं, साहेइ विहू तयाणि इत्थं ॥२ ॥

अयं चइऊण देवलोगा उ, जम्मिहिइ महाविदेहवासे ।
कुले धण-धण्णाइपडिपुण्णे, दासदासीपसुसंकुलम्मि ॥३ ॥

जया अयं आगमिहिइ गब्भे, माया पिया य होहिइ तस्स ।
रया तया जिणकहिए धम्मे, धम्मे रई हुवेइ सुदइवा ॥४ ॥

पच्छा जम्मस्स पियरा तस्स, चवेहिंति समाहूय सयणा ।
जया अयं समागओ गब्भे, तया भे[2] धम्मरया य जाया ॥५ ॥

अओ अस्स बालगस्स णामो, 'दढपइण्ण' त्ति इयाणि होज्जा ।
सव्वे पडिसुणिहिंति तयाणिं, 'दढपइण्ण' त्ति से सुहणामं ॥६ ॥

पंच धाई तयाणिं कुसला, पालेउं रक्खिहिंति पियरा ।
ताणं सुसंरक्खणम्मि सो य, वड्ढिहिइ तया सणिअं सणिअं ॥७ ॥

जया सो अट्ठवरिसो होहिइ, तया पढिउं गुरूणं पासे ।
पेसिहिंति पियरा य सुदक्खा, गीअं णाणं तइयं णेत्तं ॥८ ॥

पढिहिइ सो गुरूणं समीवे, विणएण बावत्तरिकलाओ ।
विणीओ चेअ लहिउं सक्को, गुरूणं पासे सया णाणं ॥९ ॥

जया होहिइ उवयामजुग्गो, पियरा से उव्वाहं काउं ।
कुणिहिंति तया पउरं चेट्ठं, परं सो अण काहिइ विवाहं ॥१० ॥

णाऊण अणिच्चं णरजीअं, णाऊण सत्थमया मणुस्सा ।
णाऊण दुहप्पया य भोगा, णाऊण दुल्लहं णरजीअं ॥११ ॥

णेउं सो जीविअस्स सारं, लद्धुं अव्वाबाहं सायं ।
काउं कयकम्माणं णासं, गेण्हिहिइ तयाणिं पव्वज्जं ॥१२ ॥
(जुग्गं)

---

१. पज्झटिका छंद (लक्षण-इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती हैं) । २. वयम् ।

चतुर्थ सर्ग

१. सूर्याभदेव के प्रेरणाप्रद पूर्वभव को सुनकर गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर को उसका आगामी भव पूछा।

२. यह देवायु को भोगकर वहां से च्यवन कर कहां उत्पन्न होगा? गौतम स्वामी के प्रश्न को सुनकर भगवान् ने तब इस प्रकार कहा—

३. यह देवलोक से च्यवन कर महाविदेहवास में धन-धान्यादि से परिपूर्ण तथा दास, दासी, पशु से संकुल कुल में उत्पन्न होगा।

४. जब यह गर्भ में आयेगा तब इसके माता-पिता जिनप्रज्ञप्तधर्म में रत होंगे। सद्भाग्य से ही धर्म में रति होती है।

५. उसके जन्म के बाद माता-पिता स्वजनों को बुलाकर कहेंगे— जब यह गर्भ में आया तब हम धर्म में रत हुए।

६. अतः इस बालक का नाम 'दृढ प्रतिज्ञ' हो। सभी उसके 'दृढ प्रतिज्ञ' इस शुभ नाम को स्वीकार करेंगे।

७. उसका पालन करने के लिए माता-पिता पाँच कुशल धायमाता रखेंगे। उनके सम्यक् संरक्षण में वह शनैः शनैः बढेगा।

८. जब वह आठ वर्ष का होगा तब माता-पिता उसे पढने के लिए गुरू के पास भेजेंगे। क्योकि ज्ञान को तीसरा नेत्र कहा गया है।

९. वह गुरु के समीप बहत्तर कलाओं को पढेगा। क्योंकि विनीत व्यक्ति ही गुरु के पास में ज्ञान प्राप्त कर सकता है?

१०. जब वह विवाह के योग्य होगा तब माता-पिता उसका विवाह करने के लिए बहुत चेष्टा करेंगे लेकिन वह पाणिग्रहण नहीं करेगा।

११-१२. मनुष्य-जीवन अनित्य तथा दुलर्भ है, मनुष्य स्वार्थपूर्ण है, भोग दुःख देने वाले हैं ऐसा जानकर वह जीवन का सार लेने के लिए, मोक्ष-सुख को प्राप्त करने के लिए तथा कृत कर्मों का नाश करने के लिए दीक्षा ग्रहण करेगा।

पालिय सुद्धभावेहि दिक्खं, अंते लहिस्सइ विसिट्ठणाणं ।
केवलणाणकेवलदंसणं, कररेहा व्व पेच्छिहिइ लोयं ॥१३॥

जीवा भवाण्णवा तारेंतो, भुवणम्मि बहुवरिसपेरंतं ।
विहरिस्सइ अंते काऊणं, अणसणं सो लहेहिइ मुत्तिं ॥१४॥

इह चउत्थो सग्गो समत्तो

इइ विमलमुणिणा विरइयं पज्जप्पबंधं पएसीचरियं समत्तं

१३. शुद्ध भावों से दीक्षा का पालन कर अंत में वह विशिष्ट ज्ञान-केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त करेगा। वह लोक को हाथ की रेखा की तरह देखेगा।

१४. जीवों को भवार्णव से पार करता हुआ वह अनेक वर्षों तक संसार में विहरण करेगा। अंत में अनशन कर वह मोक्ष को प्राप्त करेगा।

चतुर्थ सर्ग समाप्त

विमलमुनिविरचित पद्यप्रबंधप्रदेशीचरित्र समाप्त

मियापुत्तचरियं

कथा वस्तु

मृगापुत्र मृगाग्राम के क्षत्रिय राजा विजय का पुत्र था। उसकी माता का नाम मृगादेवी था। जब वह गर्भ में आया तब मृगादेवी के उदर में भयंकर पीडा होने लगी तथा वह राजा को अप्रिय हो गई। राजा न उसके पास जाता और न उससे बात करता। एक दिन मृगादेवी के मन में विचार आया— जब से यह गर्भ मेरे उदर में आया है, तब से राजा न मेरे पास आता है और न मेरे से बात करता है। अतः इस गर्भ को नष्ट कर देना चाहिए। ऐसा चिंतन कर उसने उस गर्भ को नष्ट करने के लिए अनेक औषधियों का प्रयोग किया। किंतु वह गर्भ नष्ट नहीं हुआ। आखिर वह विमना हो उस गर्भ का वहन करने लगी। नव मास पूर्ण होने पर उसने जन्मांध और जन्मांधरूप वाले एक बालक को जन्म दिया। उसे देखकर रानी डर गई। उसने धायमाता से कहा - इस बालक को अकूरड़ी पर फेंक दो। धायमाता उस बालक को लेकर राजा के पास आई और बोली- राजन् ! नव मास के बाद रानी ने इस बालक को जन्म दिया है। इसके रूप को देखकर उसने मुझे इसे अकूरड़ी पर फेंकना का आदेश दिया है। अब मैं तुम्हारी आज्ञा लेने आई हूँ। धायमाता के मुख से यह सुनकर राजा रानी मृगादेवी के समीप आया और बोला- 'रानी ! यह तुम्हारा प्रथम गर्भ है। अतः तुम इसका गुप्तरूप से पालन करो जिससे तुम्हारी भावी संतानें भी जीवित रहे।' राजा का कथन स्वीकार कर रानी विमना हो उस बालक को तलगृह में रखकर उसका गुप्तरूप से पालन करने लगी। उस बालक के शरीर के अंदर और बाहर आठ-आठ नाड़ियां थीं। दो कर्णछिद्रों में, दो नयन छिद्रों में, दो नासिका छिद्रों में और दो हृदय की धमनियों में थीं। उस बालक के शरीर में गर्भ से ही भस्म नामक व्याधि थी। वह जो भी खाता वह शीघ्र ही पीप और रक्त में परिणत हो जाता था। वह पीप और रुधिर नाडियों में बार-बार बहता था। भस्म व्याधि से पीडित वह उस पीप और रुधिर को खा जाता था।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर का शिष्यों सहित मृगाग्राम में आगमन हुआ। जनता भगवान् के दर्शनार्थ जाने लगी। उनकी आवाज सुनकर एक अंधे व्यक्ति ने पूछा- ये लोग कहाँ जा रहे हैं? क्या कोई उत्सव है? तब एक व्यक्ति ने कहा— नगर में कोई महोत्सव नहीं है। श्रमण भगवान् महावीर का आगमन हुआ है। अतः ये लोग उनके दर्शनार्थ जा रहे हैं। तब वह भी भगवान् के दर्शनों का उत्सुक होकर, हाथ में यष्टि लेकर भगवान् के समवशरण में आ गया। भगवान् ने उपस्थित जनसमूह को धर्मोपदेश सुनाया। प्रवचन सुनकर मनुष्य अपने घर चले गये। उस अंधे व्यक्ति को देखकर गणधर गौतम ने भगवान् से पूछा- क्या संसार में अभी ऐसा कोई व्यक्ति है जो जन्मांध तथा जन्मांधरूप है। भगवान् ने कहा- हां। गणधर गौतम ने साश्चर्य पूछा— वह कहां है? भगवान् ने कहा— वह इस मृगाग्राम के राजा विजय का पुत्र है। रानी मृगादेवी उसका गुप्तरूप से पालन-पोषण कर रही है। भगवान् का कथन सुनकर गणधर गौतम के मन में उसे देखने की इच्छा हुई। भगवान् की अनुमति लेकर वे राजा विजय के महलों में आये। रानी मृगादेवी ने उन्हें आते हुए देखा। वह उनके सम्मुख गई। उन्हें भक्तिपूर्वक वंदन कर भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की। तब गणधर गौतम ने कहा— 'मैं भिक्षा लेने नहीं आया हूँ, मैं तो तुम्हारे पुत्र को देखने आया हूँ। यह सुनकर मृगादेवी ने मृगापुत्र के बाद उत्पन्न तीन पुत्रों को गणधर गौतम के सम्मुख उपस्थित कर दिया। तब गणधर गौतम ने कहा- मैं इन्हें देखने नहीं आया हूँ। मैं तो तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को, जो जन्मांध और जन्मांधरूप है, उसे देखने आया हूँ तथा जिसका तुम गुप्तरूप से पालन कर रही हो। यह सुनकर मृगादेवी को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा- ऐसा कौन ज्ञानी व्यक्ति है जिसने मेरी गुप्त बात को भी जान लिया। तब गणधर गौतम ने भगवान् महावीर का नाम बताते हुए कहा- परिषद् में एक अंधे व्यक्ति को देखकर मैंने पूछा कि क्या इस संसार में ऐसा कोई व्यक्ति है जो जन्मांध और जन्मांधरूप है। भगवान् ने तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र के विषय में बताया कि वह जन्मांध और जन्मांधररूप है तथा तुम उसका गुप्तरूप से पालन कर रही हो।

रानी मृगादेवी जब गणधर गौतम से बात कर रही थी तब ही मृगापुत्र के भोजन का समय हो गया। रानी मृगादेवी ने गणधर गौतम से कहा- आप यहीं ठहरें, मैं अभी मृगापुत्र को दिखाती हूँ। ऐसा कहकर, भीतर जाकर उसने वस्त्र बदले और रसोईघर में जाकर मृगापुत्र के लिए भोजन लिया। फिर उसे एक गाडी में रखकर गणधर गौतम के पास आई और बोली— आप मृगापुत्र को देखने मेरे साथ आये। गणधर गौतम रानी के साथ भूमिगृह में आये। रानी ने उस बालक को भोजन दिया। वह आसक्तचित्त से उसे खाने लगा। वह खाया हुआ भोजन रक्त और पीप में परिणत हो गया। उसके बाद उसने रक्त, पीप का वमन किया और पुनः उस रक्त, पीप को खाने लगा। उसे देखकर गणधर गौतम के मन में प्रश्न उठा— इस बालक ने पूर्व भव में ऐसे कौन से कर्म किये हैं जिसका फल भोग रहा है ? वे वहां से पुनः भगवान् महावीर के पास आये। भगवान् को वंदन कर उन्होंने अपने मानसिक विचार रखे। तब भगवान् ने मृगापुत्र के पूर्वभव का वर्णन करते हुए एकादि राष्ट्रकूट का जीवन प्रस्तुत किया। उसे सुनकर गणधर गौतम ने उसके आगामी भवों के विषय में पूछा। तब भगवान् ने कहा- यह अनेकानेक भव करता हुआ अंत में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा।

मंगलायरणं

झाऊण[1] महावीरं, चरमतित्थयरं अणंतबलजुअं ।
रएमि पाइअगिराअ, मियापुत्तणामंकियं य चरियं ॥१ ॥

जीवो लहेइ दुक्खं, इहं परत्थ य णिअकम्मेहि सया ।
णिदंसणं तस्स इणं, विलसेइ मियापुत्तचरियं ॥२ ॥

मंगलाचरण

१. मैं अनतंशक्ति संपन्न, चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का ध्यान कर प्राकृत भाषा में मृगापुत्र चरित्र की रचना करता हूँ।

२. जीव अपने कर्मों के द्वारा इहलोक और परलोक में सदा दुःख पाता है उसका निदर्शन यह मृगापुत्र चरित्र है।

(१) आर्याछंद

पढमो सग्गो

अस्सिं[२] जंबूदीवे, अहेसि पुरा एगं णिवेसणं ।
रिद्धं त्थिमिअसमिद्धं, मियग्गामणामगं कंतं ॥१ ॥

वसेइ तहिं[३] भूवई, विजयणामंकियो खत्तियराया ।
णीइण्णू य णायवं, जणप्पिओ पयाण हियकंखी य ॥२ ॥

अहेसि तस्स य राणी, गुणजुआ रूवलावण्णजुत्ता य ।
भूवचित्ताणुगामी, मियादेवी[४] मिउभासिणी य ॥३ ॥

एगया सा पयाया, गुव्विणी संताणसुहाभिलासिणी ।
वम्फेइ का ण कंता, पुत्तसुहं इहइं लोअम्मि ॥४ ॥

जया इमो य गब्भो, ताए जठरम्मि समागओ तया ।
उअरे पउरा पीला, णिवस्स अप्पिआ वि य जाया ॥५ ॥

भूवो ताए पासं, ण समागमेइ ण कुणेइ य वत्तं ।
दट्ठूणं इमं ठिइं, एगया सा मणम्मि चिंतेइ ॥६ ॥

गब्भधारणस्स पुरिमं, हं अहेसि सया भूवइणो पिया ।
परं इयाणिं भूवो, मे णामं वि ण सुणिउमिच्छइ ॥७ ॥

तया भोअस्स वत्ता, तेण समं चिट्ठइ सया दविट्ठं ।
सव्वो अयं पहावो, अत्थि हु गब्भट्ठिअजीवस्स ॥८ ॥

अओ काहिमि विणासं, ओसहप्पओएण से[५] जीवस्स ।
जम्म-पुरिमं एरिसो, जो पच्छा किं कुणेहिइ सो ॥९ ॥

इइ चिंतिऊण यस्सइ[६], ओसहप्पओएण तं णासिउं ।
परं स णस्सइ णाइं, अत्थि सुबलवं आउकम्मं ॥१० ॥

तया होऊण विमणा, सा से[७] गब्भस्स कुणेइ पालणं ।
पडिपुण्णे णवमासे, सा जम्मइ एगं सुअं ॥११ ॥

---

(२) आर्या छंद । (३) तत्र (त्रपो हि ह त्थाः-प्रा. व्या. ८ ।२ ।१६१) ।
(४) मृगादेवी ।
(५) अस्य । (६) यस्यति-प्रयत्नं करोति । (७) तस्य ।

प्रथम सर्ग

१. इस जंबूद्वीप में प्राचीनकाल में मृगाग्राम नामक एक सुंदर नगर था। वह नगर ऋद्ध, स्तिमित और समृद्ध था।

२. वहां विजय नामक क्षत्रिय राजा रहता था। वह नीतिज्ञ, न्यायवान्, जनप्रिय और प्रजा का हिताभिलाषी था।

३. मृगादेवी उसकी रानी थी। वह गुणसंपन्न, रूप-लावण्य युक्त, राजा के चित्त का अनुगमन करने वाली और मृदुभाषिणी थी।

४. वह संतान के सुख को चाहती थी। एक बार वह गर्भवती हुई। इस संसार में कौन स्त्री पुत्र के सुख को नहीं चाहती?

५. जब यह गर्भ उसके उदर में आया तब उसके पेट में प्रचुर पीड़ा हुई और वह राजा की भी अप्रिय हो गई।

६. राजा न उसके समीप में जाता और न बात करता। इस स्थिति को देखकर वह मन में विचार करने लगी—

७. गर्भधारण के पूर्व मैं सदा राजा को प्रिय थी। किंतु अब राजा मेरा नाम भी सुनना नहीं चाहता है।

८. तब उसके साथ भोग की बात दूर ही है। यह सब प्रभाव इस गर्भस्थित जीव का है।

९. अत: मैं औषध-प्रयोग से इस जीव को नष्ट करुंगी। जन्म के पूर्व ही जो इस प्रकार का है वह बाद में क्या करेगा?

१०. ऐसा चिंतन कर वह औषध-प्रयोग से उसको नष्ट करने के लिए चेष्टा करने लगी किंतु वह नष्ट नहीं हुआ। क्योंकि आयुष्य कर्म बलवान् होता है।

११. तब वह खिन्नमना होकर उस गर्भ का पालन करने लगी। नव मास पूर्ण होने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया।

दट्ठुआण तं तणुअं, जम्मंधं[८] जम्मंधरूवं[९] तया ।
सा सोमाला[१०] राणी, भीआ वेवियतणू जाया ॥१२॥

आहूय अंबधाइं, साहेइ सा तं तयाणिं इत्थं ।
णेऊण दुत्ति एअं, पाडेज्जा उक्कुरुडिआए ॥१३॥

घेत्तूण अंबधाई, आगमेइ भूवइणो अब्भासे ।
णमेऊण णिवेयए, इत्थं गग्गरमाणसा[११] से ॥१४॥

णवमासस्स-पच्छा हु, तुह राणीअ इमो सुओ पसूओ ।
दट्ठूण अस्स रूवं, सा इमं य आइसीअ मं ॥१५॥

अड्डुक्खेज्जा[१२] एअं, कहिं वि उक्कुरुडिआए संपयं ।
अओ तुज्झ आएसं, गेण्हिउं हं इह समागया ॥१६॥

अंबधाईए वयं, सोऊण गोवई तक्खणं तया ।
चिरा[१३] राणीअ पासं, आगम्म स-णेहं कहेइ तं ॥१७॥

अयं ते पढुमो[१४] सुओ, अओ माइं पक्खिवेज्जा य इमं ।
किं लोगुत्ती एसा, भुवणम्मि य पासिद्धिं[१५] गया ॥१८॥

जाए पुढमो पुत्तो, लहेइ मइं तया अण्णे वि ताअ ।
अण जीवंति य पाया, अओ जणा रक्खेंति जेट्ठं (सुअं) ॥१९॥

अओ तुमं पालेज्जा, इणं भूमिगिहे रक्खिऊण अहुणा ।
अत्थि सुअस्स पालणं, माऊअ पढमं कायव्वं ॥२०॥

सोऊण भूव-वाणिं, राणी पडिसुणेइ तं मणं विणा ।
दट्ठूण आयइ-हिअं, को वम्फेइ णाइं णिअ-हिअं ॥२१॥

रक्खिऊण भूमिगिहे, सा पालेइ गुत्तरूवेणं तं ।
णाइं को वि मणुस्सो, तस्स विसयम्मि किं वि मुणेइ ॥२२॥

तस्स सरीरे णाली, आसि अट्ठ अट्ठ अंतो-बाहिरे ।
कण्ण-छिद्देसुं दुवे, दोण्णि आसि णयण-छिद्देसु य ॥२३॥

---

(८) जन्मांध-जिसके नेत्रों का आकार तो है परंतु उसमें देखने की शक्ति न हो । (९) जन्मांधरूप- जिसके शरीर में नेत्रों का आकार भी नहीं बन पाया हो । (१०) सुकुमाला (११) गद्गद्मानसा (१२) क्षिपेत् (क्षिपे गलत्थ-अड्डुक्ख... प्रा.व्या. ८ ।४ ।१४३) । (१३) चिरात् । (१४) प्रथमः (प्रथमे पथोर्वा-प्रा.व्या.- ८ ।१ ।५५) इति सूत्रेण पढमं, पुढमं, पुढुमं भवन्ति ।(१५) प्रसिद्धिम् । (अतः समृद्धयादौ वा-प्रा.व्या. ८ ।१ ।४४) ।

१२. जन्मांध और जन्मांधरूप उस पुत्र को देखकर वह सुकुमाल रानी डर गई। उसका शरीर कांपने लगा।

१३. तब उसने धायमाता को बुलाकर इस प्रकार कहा-तुम इसे शीघ्र लेकर अकूरड़ी पर फेंक दो।

१४. धायमाता उसे लेकर राजा के पास आई और नमस्कार कर गद्गद्‌मन से उसे इस प्रकार निवेदन किया—

१५-१६. नौ महीनों के बाद तुम्हारी रानी ने यह पुत्र उत्पन्न किया है। इसके रूप को देखकर उसने मुझे यह आदेश दिया है कि इसको कहीं भी अकूरड़ी पर फेंक दो। अत: मैं तुम्हारा आदेश लेने के लिए यहां आई हूँ।

१७. धायमाता के वचन को सुनकर राजा तत्काल चिरकाल के बाद रानी के पास आया और स्नेहपूर्वक उसे कहा—

१८-१९-२०. यह तुम्हारा प्रथम पुत्र है अत: इसे मत फेंको। क्योंकि संसार में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि जिस स्त्री के प्रथम पुत्र मर जाता है उसके अन्य पुत्र भी प्राय: जीवित नहीं रहते हैं। इसीलिए मनुष्य ज्येष्ठ पुत्र की रक्षा करते हैं।अत: तुम तलगृह में रख कर अभी इसका पालन करो। क्योंकि सुत का पालन करना माता का प्रथम कर्तव्य है।

२१. राजा की वाणी सुनकर रानी ने बिना मन उसे स्वीकार कर लिया। क्योंकि भविष्य के हित को देखकर कौन अपना हित नहीं चाहता है।

२२. तलगृह में रखकर वह उसका गुप्त रूप से पालन करने लगी। उसके विषय में कोई भी व्यक्ति कुछ भी नहीं जानता था।

२३. उस बालक के शरीर में अंदर और बाहर आठ-आठ नाड़ियां थीं। दो कर्ण-छिद्रो में और दो नयन छिद्रों में थीं।

णासिआ-छिद्देसु दुवे, वेण्णि खु अहेसि हिअय-धमणीए य ।
गब्भा तस्स सरीरे, वाही जाया भस्सणामा ॥२४॥

जं खाअइ तं खिप्पं, परिणमेइ पूअ-रुहिरेसुं तया ।
पवहेइ पूअ-रुहिरं, तं णालीए य पुणो पुणो ॥२५॥

सो हु तं पूअ-रुहिरं, भस्सवाहिपीलिओ य भक्खेइ ।
कम्माण विचित्तठिइं, अण जाणेइ को वि माणवो ॥२६॥

इत्थं खु वत्तमाणो सो, भोएइ णिअ-कयकम्माण भोगं ।
दुहं सुहं य अत्थ णरो, लहेइ कयकम्माणुरूवं ॥२७॥

इइ पढमो सग्गो समत्तो

२४. दो नासिका-छिद्रों में और दो हृदय की धमनियों में थीं । गर्भ से ही उसके शरीर में भस्मनामक व्याधि थी ।

२५. वह जो खाता था वह शीघ्र पीप और रक्त में परिणत हो जाता था ।वह पीप और रुधिर नाड़ियों से बार-बार बहता था ।

२६. भस्म व्याधि से पीडित वह उस पीप और रुधिर को खा जाता था। कर्मों की विचित्र स्थिति है । कोई भी उसे नहीं जानता है ।

२७. इस प्रकार का वर्तन करता हुआ वह अपने कृत कर्मों का फल भोगने लगा । मनुष्य सुख और दुःख अपने किये हुए कर्मों के अनुसार प्राप्त करता है ।

प्रथम सर्ग समाप्त

बीओ सग्गो

गामाणुगामं[1] इर रीयमाणो, सीसेहि सद्धिं भयवं य वीरो ।
मच्चा सुमग्गं सइ दंसमाणो, सो आगओ तत्थ मियाइगामे ॥१॥

सोऊण वीरस्स समागइं भो !, भत्ता समायांति तयाणि तत्थ ।
ण्हाउं य गंगाअ समागमाए, गेहंगणे को ण कुणेइ कंखं ॥२॥

सोच्चाण मच्चाण रवं तयाणिं, पुच्छेइ अंधो मणुयो य एगो ।
वच्चेंति मच्चा य इमे कहिं भो !, किं को वि अत्थत्थि महूसवो य ॥३॥

सोऊण वाणिं पुरिसो य एगो, साहेइ णाइं य महूसवो को ।
सीसेहि सद्धिं भयवं य वीरो, इण्हिं समाओ[2] णयरीअ अत्थ ॥४॥

काउं य दंसं सुणिउं य तस्स, धम्मोवएसं पुरिसा गमेंति ।
अण्णं णिमित्तं अण विज्जए हु, णेसिं जणाणं गमणस्स इण्हिं ॥५॥

सोच्चाण वायं पुरिसस्स से य उक्कंठिओ सो तुरिअं हुवीअ ।
दंसं कुणेउं विहुणो तयाणिं, कंखेइ को णो पहुणो य दंसं ॥६॥

णेऊण लट्ठिं पुरिसेण तेण, सद्धिं गओ सो विहुणो पयम्मि ।
काऊणं दंसं सुणिउं य लग्गो, धम्मोवएसं भयवस्स तस्स ॥७॥

सोऊण से पावयणं[3] मणुस्सा, अप्पस्स गेहं पइ पट्ठिआ य ।
दट्ठूण तं तत्थ णरं गयक्खं, पुच्छेइ वीरं य इंदभूई ॥८॥
एआरिसो किं भुवणम्मि भंते !, जम्मंधलो जो जणिअंधरूवो ।
मच्चो इआणिं किर अत्थि को वि, साहेइ 'आम' त्ति पहू तयाणिं ॥९॥
पुच्छेइ चित्तं पगओ तयाणिं, सो संपयं कुत्थ य अत्थि भो ! ।
बोल्लेइ वीरो णिगमस्स अस्स, रण्णो य पुत्तो इर अत्थि सो य ॥१०॥
से सुगुत्तरूवेण य पालणं य, कुव्वेइ राणी य मियाभिहा य ।
सोऊण वीरस्स इमं य वाणिं, जंपेइ इत्थं इर गोयमो सो ॥११॥

वम्फेइ दट्ठुं हिअयं य मज्झ, देज्जा य आणं य भवं य मज्झ ।
वत्थुं णवीणं य णिहालिउं को, णो होइ मच्चो य समुच्छुओ य ॥१२॥

---

(१) इंदवज्रा छंद । (२) समागतः । (३)प्रवचनम् ।

द्वितीय सर्ग

१. ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए, मनुष्यों को सदा सन्मार्ग दिखाते हुए भगवान् महावीर शिष्यों सहित उस मृगाग्राम में आये ।

२. भगवान् का आगमन सुनकर भक्तजन वहां आते है । गृहांगन में आई हुई गंगा में कौन स्नान करना नहीं चाहता ?

३. मनुष्यों की आवाज सुनकर एक अंधे व्यक्ति ने पूछा-ये कहां जा रहे हैं ? क्या यहां कोई उत्सव है ?

४. उसकी वाणी सुनकर एक व्यक्ति ने कहा—कोई महोत्सव नहीं है। अभी इस नगरी में भगवान् महावीर शिष्यों सहित आये हैं ।

५. उनके दर्शन करने के लिए तथा धर्मोपदेश सुनने के लिए मनुष्य जा रहे हैं । इनके जाने का अन्य कोई हेतु नहीं है ।

६. उस व्यक्ति की वाणी सुनकर वह अंधा मनुष्य भगवान् के दर्शन करने के लिए शीघ्र उत्कंठित हुआ । कौन व्यक्ति भगवान् के दर्शन करना नहीं चाहता ?

७. वह यष्टि लेकर उस व्यक्ति के साथ भगवान् के स्थान पर गया । दर्शन करके वह भगवान् का धर्मोपदेश सुनने लगा ।

८. भगवान् का प्रवचन सुनकर मनुष्य अपने घर चले गये । उस अंधे व्यक्ति को देखकर इंद्रभूति गौतम ने भगवान् को पूछा—

९. संसार में अभी क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो जन्मांध और जन्मांधरूप है ? भगवान् ने कहा -हां ।

१०. गौतम स्वामी ने साश्चर्य पूछा - वह अभी कहां है ? भगवान् ने कहा— वह इस नगर के राजा का पुत्र है ।

११. रानी मृगादेवी उसका गुप्त रूप से पालन कर रही है । भगवान् की इस वाणी को सुनकर गौतम स्वामी ने कहा—

१२. उसको देखने के लिए मेरा मन इच्छुक है । आप मुझे आज्ञा दें । नवीन वस्तु को देखने के लिए कौन उत्सुक नहीं होता ?

लद्धूण आणं विहुणो तयाणिं, सो गोयमो रायगिहे गओ य ।
दट्ठूण राणी मुणिगोयमं तं, वंदेइ भत्तीअ विहीअ पुव्वं ॥१३॥

साहेइ धण्णो दिवहो[४] य अज्ज, जायं भवाणं इर दंसणं य ।
भग्गं विणा णो य हुवेइ दंसं, साहूण लोअम्मि य अत्थि तच्चं ॥१४॥

घेत्तूण भिक्खं य करेण मज्झं, दाणस्स लाहं य महं य देज्जा ।
काऊण सव्वं य पहू गिहत्थो, दाणस्स लाहो मुणिणा विणा णो ॥१५॥

सोऊण राणीअ इमं य वाणिं, साहेइ इत्थं मुणिगोयमो य ।
णेउं य भिक्खं ण समागओ हं, अण्णो य हेऊ इर विज्जए मे ॥१६॥

अण्णं य बीअं य भवाण किं य, पुच्छेइ राणी लहिऊण चित्तं ।
भासेइ इत्थं मुणिगोयमो सो, दट्ठुं य पुत्तं तुह समागओ हं ॥१७॥

सोऊण वाणिं जइ[५] गोयमस्स, गंतूण गेहे णिउणा य राणी ।
आणेइ पुत्ता य दुवे तहिं ते, जाया य पच्छा य मियासुअस्स ॥१८॥

साहेइ मे संति इमे य पुत्ता, पासेज्ज सम्मं य भवं इयाणिं ।
ता दट्ठुआणं वइ[६] गोयमो सो, भासेइ राणिं वयणं इणं य ॥१९॥

जेट्ठो य पुत्तो तुह अत्थि राणी, जम्मंधलो जो जणिअंधरूवो ।
जं भूमिगेहम्मि य रक्खिऊण, पालेसि तुं संपइ गुत्तरूवं ॥२०॥

तं पेच्छिउं हं इह आगओ य, दट्ठुं इमे णो तणुआ य तुज्झ ।
सोऊण वाणिं रिसिगोयमस्स, लद्धूण चित्तं पउरं स-चित्ते ॥२१॥

पुच्छेइ राणी किर अत्थि को सो, णाणी इयाणिं भुवणम्मि अत्थ ।
वुत्ता इमा मज्झ सुगुत्तवत्ता!, फुडं लवेज्जा तुरिअं भवं य ॥२२॥
(तीहिं विसेसगं)

सोऊण राणीअ इमं य वाणिं, जंपेइ इत्थं मुणिगोयमो सो ।
णाणी य मज्झं सुगुरू य अत्थि, लोए 'महावीर' सुणामवित्तो ॥२३॥
एगं गयक्खं पुरिसं सहाए, दट्ठूण मे[७] णं परिपुच्छिओ सो ।
जम्मंधलो जो जणिअंधरूवो, एआरिसो किं इह अत्थि को वि ॥२४॥
सोऊण पण्हं भयवं दयालू, बोल्लेइ तुज्झं विसये सुअस्स ।
णेऊण आणं इर दट्ठुकामो, हं झत्ति राणी इह आगओ य ॥२५॥

(४) दिवस : (दिवसे सः-प्रा.व्या.८/१/२६३)। (५) यति। (६) व्रति। (७) मया।

१३. भगवान् की आज्ञा को प्राप्त कर गौतम स्वामी राजमहल में आये। उनको देखकर रानी ने भक्ति से विधिपूर्वक वंदना की।

१४. उसने कहा - आज दिन धन्य है जो आपका दर्शन हुआ है। भाग्य के बिना संसार में साधुओं के दर्शन नहीं होता।

१५. मेरे हाथ से भिक्षा ग्रहण करके मुझे दान का लाभ दें। गृहस्थ सब कुछ कर सकता है किंतु दान का लाभ मुनि के बिना नहीं मिलता।

१६. रानी की इस वाणी को सुनकर मुनि गौतम ने कहा - मैं भिक्षा लेने के लिये नहीं आया हूं। मेरे आने का दूसरा हेतु है।

१७. रानी ने साश्चर्य पूछा - आपका अन्य क्या हेतु है? तब मुनि गौतम ने कहा - मैं तुम्हारे पुत्र को देखने के लिए आया हूं।

१८. मुनि गौतम के वचन सुनकर निपुण रानी घर के अंदर गई और मृगापुत्र के बाद उत्पन्न हुए दो पुत्रों को वहां लाई।

१९. उसने कहा - ये मेरे पुत्र है, आप इन्हें अभीअच्छी तरह से देखें। उनको देखकर मुनि गौतम ने रानी को यह कहा—

२०-२१-२२. रानी! तुम्हारा ज्येष्ठ पुत्र जो जन्मांध और जन्मांधरूप है, भूमिगृह में रखकर जिसका तुम गुप्तरूप से पालन कर रही है, उस पुत्र को देखने के लिए मैं यहां आया हूं। तुम्हारे इन पुत्रों को देखने के लिए नहीं आया हूं। मुनि गौतम की वाणी सुनकर रानी ने विस्मित होकर पूछा - इस संसार में अभी वह कौन ज्ञानी है जिसने मेरी इस सुगुप्त बात को कहा है। आप शीघ्र स्पष्ट करें।

२३. रानी की इस वाणी को सुनकर मुनि गौतम ने इस प्रकार कहा - मेरे गुरु ज्ञानी है। संसार में वे 'महावीर' नाम से प्रसिद्ध है।

२४. परिषद् में एक अंधे व्यक्ति को देखकर मैंने उनको पूछा - क्या इस संसार में ऐसा कोई जन्मांघ और जन्मान्धरूप है।

२५. प्रश्न सुनकर कृपालु भगवान् ने तुम्हारे पुत्र के विषय में बताया। उसे देखने का इच्छुक हो मैं उनकी आज्ञा लेकर यहां आया हूं।

कुव्वेइ इत्थं य जया य वत्तं, राणीअ सद्धिं मुणिगोयमो य ।
कालो तयाणिं असणस्स जाओ, जेट्ठस्स पुत्तस्स मियासुअस्स ॥२६॥
साहेइ राणी मुणिगोयमं तं, चिट्ठेज्ज तुं अत्थ अहं य दुत्ति ।
दंसेमि पुत्तं य मियाइणामं, दट्ठुं तुमं जं इह आगओ य ॥२७॥
(जुग्गं)

वोत्तूण इत्थं गमिऊण अंते, वत्थाइ सिग्घं परिवट्टिऊण ।
गंतूण सिग्घं असणालयम्मि, सा भोयणं गेण्हइ से कये य ॥२८॥
तं रक्खिऊणं सगडम्मि एगे, आयाइ पासे मुणिगोयमस्स ।
बोल्लेइ आवच्च[८] मए समं तुं, दट्ठुं य जेट्ठं ममए य पुत्तं ॥२९॥
(जुग्गं)

राणीअ सद्धिं वइगोयमो सो, वच्चेइ दट्ठुं य मियाइपुत्तं ।
आगम्म राणी इर भूमिगेहे, भोत्तुं तया देइ मियाइपुत्तं ॥३०॥
आसत्तचित्तेण मियाइपुत्तो, भुंजेइ तं झत्ति य भोअणं य ।
भुत्तं तया तं असणं य दुत्ति, रत्तम्मि पूये परिणेइ हन्दि ॥३१॥
पच्छा य सो तस्स वमिं कुणेइ, रत्तस्स पूअस्स मियाइपुत्तो ।
खाएइ सिग्घं य पुणो वि तं य, रत्तं य पूअं य तयाणि सो य ॥३२॥
दट्ठूण इत्थं य ठिइं य तस्स, चिंतेइ चित्ते मुणिगोयमो सो ।
एआरिसं किं विहिअं य कम्मं, पुव्वे भवे जस्स फलं लहेइ ॥३३॥
जो जारिसं अत्थ कुणेइ कम्मं, सो तारिसं अत्थ फलं लहेइ ।
सायं दुहं वा मणुओ लहेइ, कम्माणुरूवं भुवणम्मि णिच्चं ॥३४॥
दट्ठूण इत्थं य मियाइपुत्तं, वीरस्स पासम्मि समागओ सो ।
साहेइ इत्थं इर वंदिऊण, दिट्ठो मए सो य मियाइपुत्तो ॥३५॥

भुंजेइ सक्खं णिरयस्स तुल्ला, पीला इयाणिं पउरा स भंते ! ।
कम्मं कयं किं पुरिमे भवम्मि, एआरिसं णेण थणंधयेण ॥३६॥

भुंजेइ जेणं विअणा[९] य घोरा, बीअं विणा णो य फलं लहेइ ।
सोऊण पण्हं जइगोयमस्स, साहेइ वीरो पुरिमं भवं से ॥३७॥

इइ बीओ सग्गो समत्तो

(८) आव्रज (९) वेदना (एत इद् वा वेदना... प्रा.व्या. १/१/१४६)।

२६. जब मुनि गौतम रानी के साथ इस प्रकार बात कर रहे थे उस समय ज्येष्ठसुत मृगापुत्र के भोजन का समय हो गया।

२७. रानी ने मुनि गौतम से कहा - तुम यहां ठहरो। मैं शीघ्र मृगापुत्र को दिखाती हूं, जिसे देखने के लिए तुम यहां आये हो।

२८-२९. इस प्रकार कहकर अंदर जाकर, वस्त्रबदल कर वह रसोई घर में गई और उसके (ज्येष्ठ पुत्र के) लिए भोजन लिया। भोजन को गाडी में रखकर वह मुनि गौतम के पास आई और बोली - मेरे ज्येष्ठ पुत्र को देखने के लिए मेरे साथ आओ।

३०. मुनि गौतम रानी के साथ मृगापुत्र को देखने के लिए गये। भूमिगृह में आकर रानी ने मृगापुत्र को खाने के लिए भोजन दिया।

३१. मृगापुत्र आसक्त चित्त से उस भोजन को खाता है। वह खाया हुआ भोजन शीघ्र ही रक्त और पीप में परिणत हो जाता है।

३२. उसके बाद वह मृगापुत्र रक्त और पीप का वमन करता है और पुनः उस रक्त और पीप को खाता है।

३३. उसकी इस स्थिति को देखकर मुनि गौतम ने मन में चिंतन किया- इसने पूर्व भव में ऐसा कौन - सा कार्य किया है जिसका फल पा रहा है।

३४. जो जैसा कर्म करता है वह यहां वैसा ही फल पाता है। मनुष्य संसार में सुख और दुःख सदा अपने कर्मों के अनुसार पाता है।

३५. इस प्रकार मृगापुत्र को देखकर वे भगवान् के पास आये और वंदन कर बोले - मैंने उस मृगापुत्र को देख लिया है।

३६-३७. भंते! वह अभी नरकतुल्य प्रचुर पीडा को भोग रहा है। इस बालक ने पूर्व भव में ऐसा क्या कार्य किया है जिससे घोर वेदना भोग रहा है? क्योंकि बिना बीज के फल नहीं होता है। मुनि गौतम का प्रश्न सुनकर भगवान् महावीर उसके पूर्व भव का वर्णन करते हैं।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तइयो सग्गो

इमम्मि[1] भारहे वासे, अहेसि णिगमं पुरा ।
समिद्धं त्थिमियं रिद्धं, सयाइद्दारणामगं ॥१ ॥

कुणेइ ससुहं रज्जं, तहिं धणवई णिवो ।
णिअबलाणुरूवं सो, पालेइ स-पया तया ॥२ ॥

तस्स पुरीअ अब्भासे, विजयवड्डणामगं ।
अहेसि खेडयं एगं, इद्धं पायारसंयुतं ॥३ ॥

पंचसयाण गामाण, पेरंतं तस्स वित्थरो ।
खेडयस्स पहाणो से, एगाइ[2] णाममाणवो ॥४ ॥

भूवइणा णिउत्तो सो, साहु-वेसी अहम्मिओ ।
कुणेइ पइकज्जेसुं, णिअमणोमयं सया ॥५ ॥

असच्चं य जहा तच्चं, कहिअ[3] सो तया मुसा ।
कुणेइ वंचणापुण्णं, ववहारं य सासयं ॥६ ॥

बंधीअ पावकम्माइं, इत्थं णिअ-करेहि सो ।
को मोत्तुं बंधिउं सक्को, माणवं इह विट्ठवे ॥७ ॥

णिअकयकुकम्मेहिं, बंधेइ माणवो इह ।
णिअ-कयसुकम्मेहिं, मुच्चेइ माणवो इह ॥८ ॥

कुणेंतो पावकम्माइं, जवेइ[4] समयं णिअं ।
अंते तस्स सरीरम्मि, पाउब्भूआ इमे गया[5] ॥९ ॥

सासो कासो जरो दाहो, कुच्छिमूलो भगंदरो ।
अजिण्णो दिट्ठिसूलो य, सिरोसूलो य कंडूओ[6] ॥१० ॥

अरुई चक्खुपीला य, कण्णपीला जलोअरो ।
कुट्ठरोओ इमे सव्वे, संति य दुहदायगा ॥११ ॥
(जुग्गं)

---

(१) अनुष्टुप् छंद । (२)एकादि । (३)कथयित्वा ।
(४) यापयति (यापेर्जवः- प्रा.८ ।४ ।४०) । (५) रोगाः । (६) खुजली ।

तृतीय सर्ग

१. प्राचीन काल में इस भारतवर्ष में शतद्वार नामक समृद्ध, स्तिमित और ऋद्ध नगर था।

२. राजा धनवती वहां सुखपूर्वक राज्य करता था। वह अपनी शक्ति के अनुसार प्रजा का पालन करता था।

३. उस नगर के समीप में विजयवर्द्धनामक एक ऋद्ध और प्राकारों से युक्त खेटक था।

४. उसका विस्तार पांच सौ ग्राम पर्यन्त था। एकादि नामक व्यक्ति उस खेटक का प्रधान था।

५. वह राजा के द्वारा नियुक्त, साधुओं का द्वेषी और अधार्मिक था। वह प्रत्येक कार्य में अपनी मनमानी करता था।

६. वह असत्य को सत्य और सत्य को असत्य कहकर सदा कपटपूर्ण व्यवहार करता था।

७. इस प्रकार उसने अपने हाथों से पाप कर्मों का बंधन किया। इस संसार में कौन मनुष्य को बंधन-मुक्त और बंधन-बद्ध करने में समर्थ हैं।

८. इस संसार में मनुष्य स्वकृत कुकर्मों से बंधता है और सत्कर्मों से मुक्त होता है।

९. पाप कर्मों को करता हुआ वह अपना समय बिताने लगा। अंत में उसके शरीर में ये रोग उत्पन्न हुए हैं —

१०-११. श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षिमूल, भगंदर, अजीर्ण, दृष्टिशूल, शिर:शूल, खुजली, अरुचि चक्षुवेदना, कर्णवेदना, जलोदर, कुष्ठरोग आदि। ये सभी दु:ख देने वाले हैं।

जया एगो वि वाही य, सरीरम्मि हु जायए ।
तया वि विउला पीला, हुवेइ माणवाण य ॥१२॥

बहुसंखा जया रोआ, समुप्पज्जंति विग्गहे ।
तया पीलाअ का वत्ता, हुवेइ पुरिसाण य ॥१३॥

(जुग्गं)

सोलसरोअगत्थो य, अणुहवीअ वेअणं ।
एगाइरट्ठकूडो सो, अट्टज्झाणपरो तया ॥१४॥

कारेइ घोसणं इत्थं, णिअ-अणुअरेहि सो ।
जो को वि तस्स रोएसुं, एगं वि उवसामइ ॥१५॥

देइ से पउरं वित्तं, एगाइरट्ठकूडओ ।
घोसणं सुणिऊणं णं, चिगिच्छं कुणिउं य से ॥१६॥

दक्खा विज्जा समायांति, परं ण को वि पक्कलो[७] ।
तेसु रोएसु एगं वि, तयाणिं उवसामिउं ॥१७॥

(तीहिं विसेसगं)

जया कये पयत्ते वि, एगो वि ण उवसामइ ।
तया विसण्णचित्तो सो, विमणा ता सहेइ य ॥१८॥

पप्प वि पउरं पीलं, एगाई खेडणायगो ।
सत्तो पुव्वव्व भोएसु, रज्जे अंतेउरम्मि य ॥१९॥

भोत्तूण मणुयाउं सो, अड्ढाइज्जसयं तया ।
काऊण मरणं अंते, पढमे णिरये गओ ॥२०॥

भुंजेऊण ठिइं तत्थ, एगं य सागरोवमं ।
पच्छा पुरे समुप्पन्नो, हत्थिणाउरणामगे ॥२१॥

जो तुमए य दिट्ठो य, मियापुत्तो य संपयं ।
एगाइरट्ठकूडस्स, जीवो अत्थि स गोयमो ! ॥२२॥

पुव्वकयाण कम्माण, फलं भुंजेइ संपयं ।
कुणेइ जारिसं कम्मं, फलं लहेइ तारिसं ॥२३॥

(७) समर्थः (पक्का सहा_ पाइयलच्छीनाममाला ५२) ।

१२-१३. जब एक भी रोग शरीर में उत्पन्न होता है तब भी मनुष्यों के प्रचुर पीडा होती है । जब अनेक रोग शरीर में उत्पन्न होते है तब मनुष्यों की वेदना का क्या कहना ?

१४. वह एकादि राष्ट्रकूट सोलह रोगों से ग्रस्त हो वेदना का अनुभव करने लगा । वह आर्त्तध्यान करने लगा ।

१५-१६-१७. उसने अपने अनुचरों से इस प्रकार घोषणा कराई कि जो कोई भी उसके रोगों में से एक को भी उपशान्त कर देगा उसे एकादि राष्ट्रकूट प्रचुर धन देगा । इस घोषणा को सुनकर उसकी चिकित्सा करने के लिए कुशल वैद्य आते हैं किंतु कोई भी तब उन रोगों में एक को भी उपशांत करने के लिए समर्थ नहीं हुआ ।

१८. जब प्रयत्न करने पर एक भी रोग शांत नहीं हुआ तब वह खिन्न हो गया । वह विमना उन्हें सहन करने लगा ।

१९. प्रचुर वेदना को पाकर भी एकादि राष्ट्रकूट भोगों में, राज्य में और अंतःपुर में पूर्ववत् आसक्त रहा ।

२०. वह २५० वर्ष का मनुष्यायु भोग कर, मर कर प्रथम नरक में गया ।

२१. वहां की एक सागरोपम स्थिति को भोग कर वह हस्तिनापुर नगर में उत्पन्न हुआ ।

२२. हे गौतम ! तुमने जिस मृगापुत्र को देखा है वह एकादि राष्ट्रकूट का जीव है ।

२३. वह अभी पूर्वकृत कर्मों का फल भोग रहा है । जो जैसा कर्म करता है वह वैसा फल प्राप्त करता है ।

सुणेऊण भवं पुव्वं, मियापुत्तस्स गोयमो ।
पुच्छेइ भगवन्तं य, अयं कहिं गमिस्सइ ॥२४ ॥

तया भणेइ तं वीरो, मियापुत्तो य बालगो ।
णराउयं य भोत्तूण, छव्वीसवरिसस्स य ।२५ ॥

लद्धूण मरणं पच्छा, वेअड्ढपव्वयम्मि सो ।
हुवेहिइ इभारी[८] य, करो महाअहम्मिओ ॥२६ ॥
(जुग्गं)

संचिणिस्सइ पावाइं, बहूइं तत्थ सो तया ।
लहेऊण मइं अज्जे, णारयम्मि जणिस्सइ ॥२७ ॥

तओ णिस्सरिऊणं सो, पक्खिजोणिं लहेहिइ ।
लद्धूण मरणं तच्चे, णिरयम्मि जणिस्सइ ॥२८ ॥

भोत्तूण आउसं तत्थ, पुणो सीहो हुविस्सइ ।
लद्धूण मरणं चोत्थे, णिरयम्मि गमिस्सइ ॥२९ ॥

तओ णिस्सरिऊणं सो, भुअंगमो हुवेहिइ ।
लहेऊण मइं तत्थ, पंचमे णिरये तया ॥३० ॥
(जुग्गं)

लहेऊण जणिं पच्छा, भोत्तूण आउसं णिअं ।
सो हुविस्सइ इत्थी य, णिअकम्मविवागओ ॥३१ ॥

कालं काऊण छट्ठम्मि, णिरये स गमिस्सइ ।
भोत्तूण आउसं तत्थ, होहिइ मणुओ य सो ॥३२ ॥

काऊण मरणं तत्थ, सत्तमे णिरये तया ।
लहेऊण जणिं तत्थ, भोत्तूण आउसं णिअं ॥३३ ॥

पंचेंदिएसु जीवेसु, जलयरेसु गोयमो ! ।
लहिस्सेइ जणिं सो य, तस्स विविहजोणिसुं ॥३४ ॥
अद्धबारहलक्खाइं, कुलकोडी[९] य अत्थि से ।
तम्मि एगम्मि एगम्मि, लक्खवारं जणेहिइ ॥३५ ॥

---

(८) सिंह: ।

२४. मृगापुत्र का पूर्वभव सुनकर गौतमस्वामी ने पूछा - वह कहां जायेगा ?

२५-२६. तब भगवान् ने कहा- वह मृगापुत्र बालक २६ वर्ष की मनुष्यायु को भोग कर, मर कर वैताढ्य पर्वत पर क्रूर और अधार्मिक सिंह होगा।

२७. वह वहां बहुत पापों का अर्जन करेगा। मर कर वह प्रथम नरक में उत्पन्न होगा।

२८. वहां से निकलकर वह पक्षियोनि को प्राप्त करेगा और मर कर तीसरे नरक में उत्पन्न होगा।

२९. वहां का आयुष्य भोग कर वह पुन: सिंह होगा और मर कर चौथे नरक में जायेगा।

३०-३१. वहां से निकलकर वह सर्प होगा और मर कर पांचवें नरक में उत्पन्न होकर, अपना आयुष्य भोग कर स्वकृत कर्मों के फल से स्त्री होगा।

३२. मर कर वह छट्ठे नरक में जायेगा। वहां का आयुष्य भोगकर वह मनुष्य होगा।

३३-३४. मर कर वह सातवें नरक में उत्पन्न होकर, अपना आयुष्य भोगकर पंचेन्द्रिय जलचर जीवों की विविध योनियों में उत्पन्न होगा।

३५. उन जीवों की १२ ॥ लाख कुल कोटियां हैं। उनकी एक-एक कोटि में वह लाख बार उत्पन्न होगा।

पच्छा णेहिइ जम्मं सो, चउप्पाएसु पाणिसु ।
उर-भुआइसप्पेसु, खेअरेसुं य सो तया ॥३६ ॥

चउरिंदियजीवेसु, तेइंदिएसु पाणिसु ।
बेइंदिएसु सो जम्मं, गहिस्सइ जहक्कमं ॥३७ ॥

सो वणप्फइकायेसुं,[१०] पच्छा जणिं गहिस्सइ ।
पुढवी-आउ-तेऊसु, वाउकायेसु सो तया ॥३८ ॥

कुणेऊण भवं लक्खं, सुपइट्ठपुरे पुरे ।
गोणरूवेण सो तत्थ, गेण्हिस्सइ जणिं तया ॥३९ ॥
(जुग्गं)

लद्धूण मरणं तत्थ, तम्मि च्चेअ पुरे पुणो ।
कम्मि सेट्ठिकुले सो य, पुत्तरूवो हुविस्सइ ॥४० ॥

लद्धूण साहुणो संगं, धम्मं तह[११] सुणिस्सइ ।
पप्प वेरग्गभावं सो, पव्वज्जं य गहिस्सइ ॥४१ ॥

पव्वज्जं सुद्धभावेण, पालिअ समयं बहुं ।
अंते आलोयणं कट्टु, लहेऊण मइं तहिं ॥४२ ॥

अज्जे देवालये सो य, सोहम्मकप्पणामगे ।
हुविस्सइ सुरो पच्छा, स-सुकम्मविवागओ ॥४३ ॥
(जुग्गं)

चइऊण तओ पच्छा, जणिं तया गहिस्सइ ।
महाविदेहवासम्मि, णररूवेण सो तया ॥४४ ॥

लद्धूण मुणिणो संगं, बोहिं तेण लहिस्सइ ।
गिहवासं चइत्ताणं, अणगारो हुविस्सइ ॥४५ ॥

णासिअ घाइकम्माइं, केवलणाणदंसणं ।
सो लहेऊण लोअम्मि, केवली त्ति हुविस्सइ ॥४६ ॥

विहरिस्सइ वासाइं, बहूइं केवली य सो ।
अंते अणसणं कट्टु, सिद्धो होहिइ सो तया ॥४७ ॥

तइयो सग्गो समत्तो

इइ विमलमुणिणा विरइयं पज्जप्पबंधं मियापुत्तचरिअं समत्तं

---

(९) कुलं-जीवसमूहं, कोटि-भेदः । (१०) वनस्पतिकायेषु (वृहस्पतिवनस्पत्योः सो वा—प्रा.व्या.८ ।२ ।६९) ।
(११) तत्र ।

३६. तत्पश्चात् वह चतुष्पाद प्राणियों में, उरसर्प, भुजसर्प, खेचर में उत्पन्न होगा।

३७. फिर वह चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होगा।

३८-३९. तत्पश्चात् वनस्पतिकाय में उत्पन्न होगा। उसके बाद पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय में लाखों भव करके सुप्रतिष्ठपुर नगर में बैल रूप में उत्पन्न होगा।

४०. वहां मृत्यु प्राप्त कर वह पुन: उसी नगर में किसी श्रेष्ठी-कुल में पुत्ररूप में उत्पन्न होगा।

४१. साधुओं की संगति पाकर वह धर्म का श्रवण करेगा और वैराग्यभाव प्राप्त कर प्रव्रज्या ग्रहण करेगा।

४२-४३. शुद्ध भावों से प्रव्रज्या का बहुत समय तक पालन कर, अंत में आलोचना कर मृत्यु को प्राप्त कर वह सौधर्मकल्प नामक प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा।

४४. वहां से च्यवन कर वह महाविदेहवास में पुरुषरूप में उत्पन्न होगा।

४५. वहां साधुओं की संगति पाकर उनसे बोधि (सम्यक्त्व) प्राप्त करेगा। तत्पश्चात् गृहवास को छोड़ कर वह साधु बनेगा।

४६. घाति कर्मों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय) का नाश करके वह केवली होगा।

४७. वह अनेक वर्षों तक विहरण करेगा। अंत में अनशन कर वह सिद्ध (समस्त कर्मों से मुक्त) होगा।

तृतीय सर्ग समाप्त

विमलमुनिविरचित पद्यप्रबंधमृगापुत्रचरित्र समाप्त

पसत्थी

संपइ जेणधम्मम्मि, पमुहरूवेण दुवे संपदाया ।
एगो किर दिगंबरो, बीओ सेअंबरो विलसइ ॥१ ॥
सेयंबरेसुं तिहा, संति पमुहरूवेण संपदाया ।
मंदिरमग्गी ठाणयवासी तेरापहो य वरो ॥२ ॥
तेसु लोए विस्सुओ, तेरापहो अहुणा एगत्तेण ।
होइ तम्मि एगो च्चिअ, आयरिओ सव्वेसि पमुहो ॥३ ॥
पेसेइ जत्थ मुणिवो, वच्चेंति तत्थ सहरिसं हु समणा ।
जं कुणिउं गो कहेइ, तं कुव्वेंति समे साहुणो ॥४ ॥
सव्वे साहुणो तत्थ, हुंति आयरियस्स च्चिअ सइ सीसा ।
ण को वि करेइ साहू, कं वि कयावि णिअं विणेयं ॥५ ॥
तेरापहस्स तस्स त्थि, पढमो आयरियो खलु सिरिभिक्खू ।
आसि आयारकुसलो, वीरवयणेसु य सद्धालू ॥६ ॥
बीओ भारमल्लो य, तइयो रिसिरायो य बम्हयारी ।
चउत्थो जीयमल्लो, पंचमो किर महवारायो ॥७ ॥
छट्ठो माणगलालो, सत्तमो डालचंदो हु गणेसो ।
अट्ठमो कालुरामो, नवमो य सिरितुलसीरामो ॥८ ॥
दाही णिअगभारं, सो मुणिणो णथमल्लस्स विबुहस्स ।
परिवट्टिऊण णामं, से रक्खीअ 'महापण्णो' त्ति ॥९ ॥
जस्स सासणे जाओ, तेरापहो लोअम्मि य विस्सुओ ।
कि वण्णेमि महत्तं, गुरुणो णिअचुच्छबुद्धीए ॥१० ॥
जस्स सासणे जाओ, साहूसंघे सिक्खावित्थारो ।
सक्कयपाइअ गिराअ, अणेगे मुणी पारंगया ॥११ ॥
लहिअ तेसिं पेरणं, मए विमलमुणिणा संपयं कयं ।
पाइअभासज्झयणं, कडा ताए इमा रयणा य ॥१२ ॥
णेसि कव्वाण रयणा, विभिन्नसमये विभिन्नणयरेसु[२] य ।
जाया गुरुणो बलेण, णिमित्तमेत्तो हं संपयं ॥१३ ॥
विविहसिक्खाजुत्ताणि, इमाणि पढिऊण पाइयसिक्खगा य ।
जइ लाहं लहिस्संति, सहलो हुवेइ समो मज्झं ॥१४ ॥

इइ विमलमुणिणा विरइयो 'पाइयपच्चूसो' समत्तो

प्रशस्ति

१. वर्तमान में जैनधर्म में प्रमुखरूप. से दो संप्रदाय हैं - (१) दिगम्बर (२) श्वेताम्बर।

२. श्वेताम्बरों में प्रमुख तीन संप्रदाय है - (१) मन्दिर मार्गी (२) स्थानकवासी (३) तेरापंथ।

३. उनमें तेरापंथ संसार में एकता से प्रसिद्ध है। उसमें सबसे प्रमुख एक ही आचार्य होते हैं।

४. आचार्य जहां भेजते है वहां मुनिजन हर्षपूर्वक जाते हैं। वे जो करने के लिए कहते हैं उसे सभी साधु करते हैं।

५. उसमें सभी साधु आचार्य के ही शिष्य होते हैं। कोई भी साधु किसी को भी अपना शिष्य नहीं बनाता।

६. उस तेरापंथ के प्रथम आचार्य श्री भिक्षु स्वामी थे। जो आचारकुशल तथा वीरवचनों में श्रद्धावान् थे।

७. उसके दूसरे आचार्य श्री भारमल्ल जी थे। तीसरे आचार्य श्री ऋषिराय थे (जिन्हें 'ब्रह्मचारी' शब्द से स्वामीजी ने अलंकृत किया था)। चौथे जीतमल जी (जिन्हें जयाचार्य भी कहा जाता है) और पांचवें मघराज जी थे।

८. उसके छट्ठे आचार्य माणकलाल जी, सातवें आचार्य डालचंद जी और आठवें आचार्य कालुराम जी थे। नवमें आचार्य श्री तुलसी हैं।

९. उन्होंने विद्वान् मुनिं नथमल जी को अपना भार दे दिया है और उनका नाम बदल कर 'आचार्य महाप्रज्ञ' रखा है।

१०. जिनके शासन में तेरापंथ संसार में विश्रुत हुआ, उन गुरुदेव की महत्ता का मैं अपनी तुच्छबुद्धि से क्या वर्णन करूं ?

११. जिनके शासन में साधुसंघ में शिक्षा का विस्तार हुआ। अनेक मुनि संस्कृत, प्राकृत में पारंगत हुए।

१२. उन गुरुदेव की प्रेरणा पाकर मैंने (विमल मुनि ने) प्राकृत भाषा का अध्ययन किया और उसमें ये रचनाएं की है।

१३. गुरुदेव की शक्ति से इन काव्यों की रचना विभिन्न समय और विभिन्न नगरों में हुई है। मैं तो सिर्फ निमित्तमात्र हूं।

१४. अनेक शिक्षाओं से युक्त इन काव्यों को पढ़कर प्राकृत अध्येता यदि लाभान्वित होंगे तो मेरा श्रम सार्थक होगा।

विमलमुनि विरचित 'प्राकृतप्रत्यूष' समाप्त

परिसिट्ठ
कव्वागयसुत्तीओ
(काव्यागत सूक्तियां)

बंकचूलचरियं

१. कूरत्तणेणं हुविउं ण पक्कलो, णो को वि कस्सावि पियो य माणवो ।२ ।१०

२. हेऊ ममत्तं हु दुहस्स सासयं । २ ।१३

३. धम्मो य कम्मेहि गुरूण दुक्करो ।२ ।१६

४. मच्चाण किं किं अहियं ण जायए, लोअम्मि णूणं य कुसंगओ सया ।२ ।१७

५. लोअम्मि पावाणि लहेंति णाइं, कयाइ भो ! गुत्ततणं ति सच्चं ।३ ।२५

६. जो देइ दंडं ण कुकम्मकारिं, अहम्मि करेइ स तस्स वुड्ढिं ।३ ।२८

७. णिच्चं पयाणं उवरि पहावो, पडेइ लोगे किर सासगाणं ।३ ।३१

८. कम्माइं जो जारिसाइं करेइ, णूणं तेसिं सो फलाइं लहेइ ।४ ।१०

९. कत्ताराणं सारिसाणं ण दंदो ।४ ।१४

१०. भग्गहीणा ण लाहं य, लहेंति लहिउं वसुं ।५ ।४०

११. कयम्मि जस्सिं य लहेइ लाहं, जहेइ किं तं मणुयो कयाइ ।६ ।१०

१२. समागयं बंधुवरं य पस्स, पमोयए का भइणी ण लोए ।६ ।१३

१३. पासा विवत्ती य जया हुवेज्जा, णो रोयए भो ! हियया य वाणी ।६ ।३३

१४. आयांति मच्चाण जया कुघस्सा, बुद्धी तयाणिं विवरीयमेइ ।६ ।४६

१५. पिआअ वाणीअ ण होइ को वसो ।८ ।७

१६. चयइ काउं बलवं य किं य णो ।८ ।१७

१७. णिअं परं होज्ज य को वि माणवो, णिवो य डंडेज्ज सया कुकम्मियं ।८ ।४४

१८. करेइ कम्मं मणुयो य कुच्छियं, फलं य सो तस्स लहेइ कुच्छियं ।८ ।४७

१९. सक्केइ को ठाउं माणवो, कयाइ बलिणो य सम्मुहे ।९ ।२५

२०. विणा अत्तसुद्धिं समं मुहा ।९ ।६३

पएसीचरियं

१. को अण ण्हाइ गंगाए, गिहंगणागयाअ य ।२ ।१७

२. कायव्वमेअं पढमं णिवस्स, पदेज्ज पावीण सया य डंडं ।३ ।२५

३. डंडेज्ज भूवो य कुकम्मकारिं, पया लहेज्जा य जओ य सिक्खं ।३ ।२९

४. धम्मे रई हुवेइ सुदइवा ।४ ।४

५. गीअं णाणं तइअं णेत्तं ।४ ।८

६. विणीओ च्चेअ लहिउं सक्को, गुरूणं पासे सया णाणं ।४ ।९

मियापुत्तचरियं

१. वम्फेइ का ण कंता, पुत्तसुहं इहइं लोअम्मि ।१ ।४

२. अत्थि सुबलं आउकम्मं ।१ ।१०

३. दट्ठूण आयइ-हिअं, को ण वम्फेइ णाइं णिअहिअं ।१ ।२१

४. कम्माण विचित्तठिइं, अण जाणेइ को वि माणवो ।१ ।२६

५. दुहं सुहं य अत्थ णरो, लहेइ कयकम्माणुरूवं ।१ ।२७

६. कंखेइ को णो पहुणो य दंसं ।२ ।६

७. वत्थुं णवीणं य णिहालिउं को, णो होइ मच्चो य समुच्छुओ य ।२ ।१२

सद्दसूई
(शब्दसूची)

अइच्छेइ	— जाता है	गोत्तं	— नाम
अकम्हा	— अचानक	घत्तेइ	— फेंकता है
अग्घं	— मूल्यवान	चएइ	— छोड़ता है
अब्भिडेइ	— साथ-साथ जाता है।	चवेइ	— कहता है
अड्डुक्खेज्जा	— गिरा दो, फेंक दो	चिन्धं	— चिन्ह
अण	— नहीं	चित्तं	— आश्चर्य, मन
अयं	— लोह को	चोज्जं	— आश्चर्य, चोरी
अहं	— पाप	जठरम्मि	— उदर में
अहियं	— अधिक	जणिं	— जन्म को
अहियो	— अहित	जवेइ	— बीताता है
आगारेऊण	— बुलाकर	जाएउं	— मांगने के लिए
आयईए	— भविष्यत् काल में	जीओ	— जीवित
आसयं	— आश्रय	झंखेइ	— विलाप करता है
उग्गेइ	— खोलता है	झत्ति	— शीघ्र
उत्ती	— उक्ति	ढुण्ढुल्लिउं	— खोजने के लिए
उब्भं	— ऊपर	णवर	— केवल
उव्वाहं	— विवाह को	णवरि	— शीघ्र
उअ	— देखो	णाइं	— नहीं
उवयामं	— विवाह को	णायं	— न्याय को
उवाणये	— भेंट में	णारओ	— नारकीय जीव
उरीकुणेज्जा	— स्वीकार करो	णीलुक्केज्ज	— जायें
ऊणे	— न्यूनता में	तरेइ	— समर्थ होता है
ऊसुओ	— उत्सुक	तह	— वहां
ओणेइ	— दूर करता है	तोण्डम्मि	— मुख में
ओणेंतो	— दूर करता हुआ	थेणो	— चोर
ओहावेइ	— आक्रमण करता है	थेयं	— चौरी
कइवाहदिणा	— कुछ दिन	दक्खं	— निपुणता
कणी	— कन्या	दिवहो	— दिन
कयग्घो	— कृतघ्न	दुत्ति	— शीघ्र
कुघस्सा	— खराब दिन	धिज्जं	— धैर्य
किसाणुपत्तं	— अग्निपात्र	पंफुल्लो	— प्रसन्न
गग्गरमाणसा	— गद्गद्मनवाली	पक्कलो	— समर्थ
गारवं	— गौरव	पच्चलो	— समर्थ
गूहं	— गूढ	पच्चारेइ	— उपालंभ देता है

पण्हो	—	प्रश्न
पुक्कलं	—	बहुत
पइण्णा	—	प्रतिज्ञा
पउरो	—	पुरवासी जन
पउत्तिं	—	प्रवृत्ति को
पढुमो	—	प्रथम
पडिजाणिहामि	—	स्वीकार करूंगा
पडिजाणेज्ज	—	प्रतिज्ञा करो
पडिसुणेइ	—	स्वीकार करता है
पणामिऊण	—	अर्पित करके
पणामेमि	—	अर्पित करता हूं
परेआ	—	नारकीय जीव
परोप्परे	—	परस्पर में
पारेइ	—	समर्थ होता है
पाहुडं	—	भेंट
पासिद्धिं	—	प्रसिद्धि को
पिसुणेइ	—	कहता है
पुढमो	—	प्रथम
पुरिमं	—	पहले
पेरंतं	—	पर्यन्त
फंदेइ	—	स्पन्दन करता है
बलिउट्ठाण	—	कौवों का
बाहिं	—	बाहर
बाहिरं	—	बाहर
बुज्झा	—	जानकर
बोलेइ	—	बीतता है
मत्ता	—	मानकर
मइलं	—	मलिन
मइलत्तं	—	मलिनता को
मईअ	—	मृत्यु का
मयं	—	माना
महेइ	—	चाहता है
माइं	—	मत
मेरा	—	सीमा
मोरउल्ला	—	व्यर्थ
रिक्कं	—	रिक्त
रिअेइ	—	प्रवेश करता है
रुच्चस्स	—	पति के
लुक्को	—	रूग्ण
लुट्टिउं	—	लूटने के लिए
वज्जरेमि	—	कहता हूं
वम्फेइ	—	चाहता है
विण्णपुरिसेहिं	—	विज्ञ पुरुषों के द्वारा
वइरं	—	वैर
वईओ	—	बीत गया
वएज्ज	—	चलें
वहुत्ता	—	बहुत
वाउलो	—	व्याकुल
वाहाण	—	घोड़ों का
विअणा	—	वेदना
विढवेउकामा	—	अर्जित करने के इच्छुक
विवहं	—	भार को
विहीरेइ	—	प्रतीक्षा करता है
विहूणो	—	रहित
वुंदारयपरियरेहि	—	देव परिवार से
संतणं	—	सान्त्वना को
संथवं	—	परिचय
संथुअं	—	परिचय
सइ	—	एक बार
सइं	—	स्मृति
सण्हाअ दिट्ठीअ	—	सूक्ष्म दृष्टि से
समं	—	साथ
समं	—	श्रम
समयण्णू	—	समयज्ञ
सयराहं	—	शीघ्र
सहा	—	समर्थ
साही	—	वृक्ष
साहेइ	—	कहता है
सुई	—	पवित्र
सोमाला	—	सुकुमाल (स्त्री)
हक्केइ	—	निषेध करता है
हलुअं	—	हल्का, लघु
हियया	—	हितकारी
हियं	—	हृदय

लेखक परिचय

लेखक	:	मुनि विमलकुमार (तारानगर)
जन्म	:	वि.सं. २००२ भाद्रकृष्णा ६ (कलकत्ता)
दीक्षा	:	वि.सं. २०१७ केलवा (राजस्थान) में तेरापन्थ द्विशताब्दी के अवसर पर युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी द्वारा।
शैक्षणिक योग्यता	:	योग्यतर (बी.ए. समकक्ष) तथा संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी में विशेष अध्ययन।
यात्राएं	:	राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, दिल्ली, पंजाब आदि प्रान्तों की।
प्रकाशित साहित्य	:	प्राकृत – पाइयसंगहो (सटिप्पण), पाइयपच्चूसो, पाइयपडिबिंबो हिन्दी – आगमिक और ऐतिहासिक कथाएं
संपादित साहित्य	:	वाक्य रचना बोध, आगम संपादन की समस्याएं
अप्रकाशित साहित्य	:	प्राकृत – थूलीभद्दचरियं, पियंकरकहा संस्कृत गजसुकुमाल चरित्रम्, भद्रचरित्रम्, प्रतिबोध काव्यम्।